चन्दामामा
सितम्बर १९८८

No share prices,
no political fortunes, yet...

Over 40% of Heritage readers are professionals or executives, 61% from households with a professional / executive as the chief wage earner. Half hold a postgraduate degree or a professional diploma.

– from an IMRB survey conducted in Oct. 1986

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.

It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.

More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.

And over 90% are slowly building their own Heritage collection.

Isn't it time you discovered why?

THE HERITAGE

CMP-2155

So much in store, month after month.

चन्दामामा

सितम्बर 1988

विषय-सूची

एक प्रति : २-५०

वार्षिक चन्दा : ३०-००

रोमन हत्यारा सुपर कमांडो ध्रुव

चन्द्रहार की चोरी

गगन और बारूद के धमाके

अगलू-पिछलू और मुफ्त की मुसीबत

प्रत्येक का मूल्य चार रुपये

प्रकाशक : राजा पॉकेट बुक्स शक्ति नगर, दिल्ली-110007

Kare 147
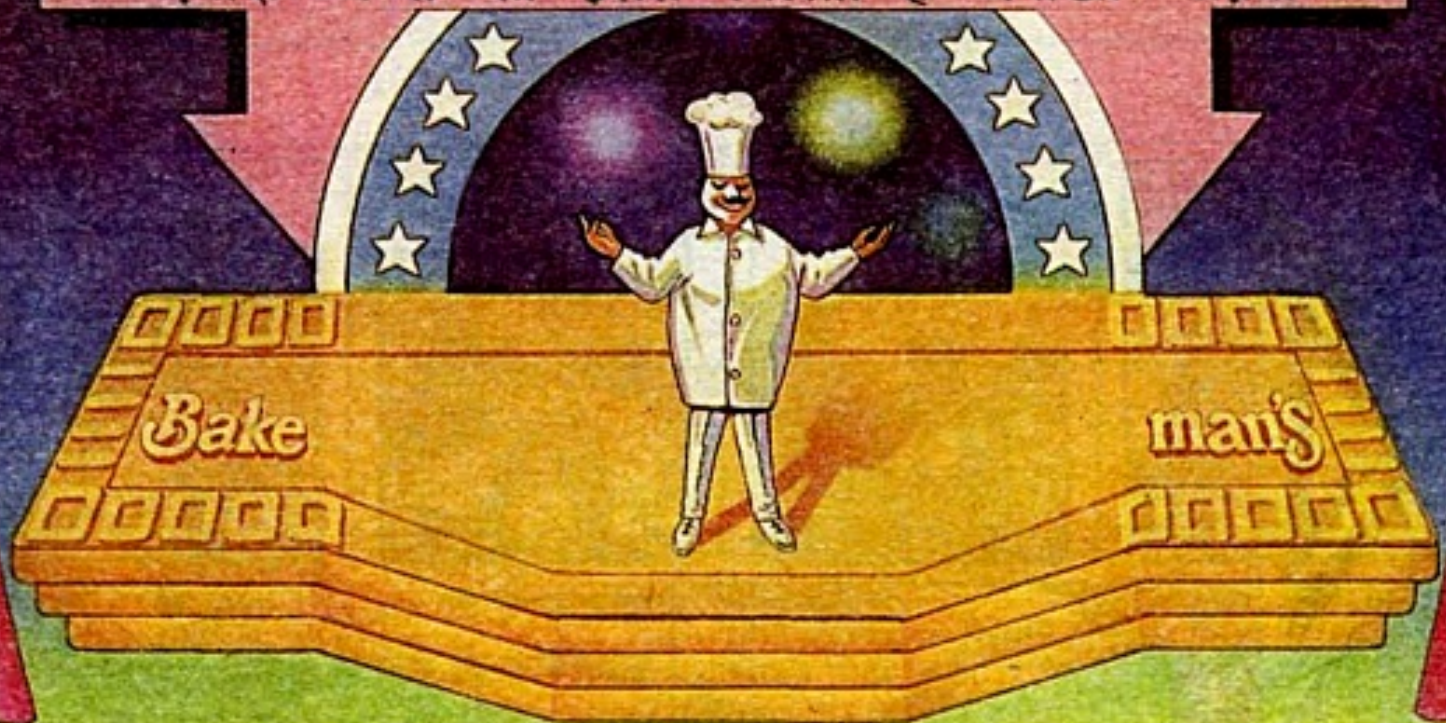
चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

दूसरों के मन को दुखाए बिना वार्तालाप करना, केवल शिक्षा द्वारा प्राप्त संस्कार से ही उपलब्ध होनेवाला गुण नहीं है। हम स्पष्ट संभाषण करने वाले केवल पंडितों को ही नहीं, बल्कि अनेक अनपढ़ व्यक्तियों को भी सरल, सरस और भद्र व्यवहार करते हुए अक्सर देखते हैं। "तथास्तु-देवता" नामक कहानी व्यंग्यप्रधान शैली में इस सत्य का बोध कराती है।

अमर वाणी

अपराधो न मेस्तीति, नैतद् विश्वास कारणम् ।
विद्यते ही नृशंसेभ्यो, भयं गुणवतामपि ॥

[इस बातपर विश्वास करना हितकर नही है, कि अगर हमने किसीका अपकार नहीं किया, हमारी कोई हानि नहीं करेगा। भले ही उत्तम व्यक्ति जैसे प्रतीत होते हों, मगर दुष्टों के प्रति सावधानी के साथ व्यवहार करना अत्यंत आवश्यक है।]

वर्ष : ४१ सितम्बर १९८८ अंक : १

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

चन्दामामा के संवाद

मोहंजदडो का विनाश कैसे हुआ ?

मोहंजदडो की प्राचीन सभ्यता के विनाश के बारे में सब लोग थोडी बहुत जानकारी रखते हैं । परंतु यह बात अभीतक सुनिश्चित नहीं है कि मोहंजदडो नगर का विनाश कैसे हुआ । रूस के प्रमुख वैज्ञानिक श्री. एम. दिमिट्रिव का विचार है, कि समय समय पर हुए रासायनिक पदार्थों के विस्फोटों के कारण संभवतः उस नगर का विनाश हुआ होगा ।

नये मूँगों का टापू

पूर्वी मलेशिया के सभा प्रदेश कुडात से ४० मील की दूरी पर ईशान्य दिशा में समुद्र के बीच हाल ही में एक छोटा सा मूँगों वाला टापू निकल आया है ।

सच्चा दोस्त

श्री लंका का एक किसान अपने दो कुत्तों को साथ लेकर जंगल में गया और किसी दुर्घटना का शिकार होकर वहीं मर गया । इस पर एक कुत्ता अपने मृत मालिक के शव का पहरा देता रहा और दूसरा कुत्ता दौड़ता हुआ मालिक के घर पहुँचा और अनेक प्रकार से भोंक कर और हो-हल्ला मचाकर उसके परिवार के सदस्यों को घटना-स्थल पर ले गया ।

रानी के आभूषण

3,200 साल पूर्व मिसर देश पर शासन करनेवाले फराओ रामेसेस की रानी नेफेर टिटि की ध्वस्त समाधि से उसके आभूषण प्राप्त हुए हैं ।

ईमानदारी

एक राजा के वृद्ध मन्त्री का देहान्त हुआ। इसपर राजा ने उसी मंत्री के पुत्र को उस पद पर नियुक्त किया। नये मंत्री ने जिस दिन पद-ग्रहण किया, उसी दिन राजा के सामने एक समस्या खड़ी हुई। उस राज्य में कर-वसूली करनेवाला अधिकारी वसूला हुआ सारा धन लेकर दूसरे राज्य में भाग गया।

राजा ने मन्त्री से कहा, "सुनो, इस बार हम करवसूली के लिये जिस की नियुक्ति करेंगे, उसकी ईमानदारी की परीक्षा लेंगे। मगर यह परीक्षा कैसे ? तुम्हारे पिता होते तो झट से कोई उपाय सुझाते।"

"महाराज, आप ढिंढोरा पिटवा दीजिये। मैं ईमानदार व्यक्ति ढूँढूंगा।" मन्त्री ने कहा।

ढिंढोरा सुनकर दस व्यक्ति राजदरबार में पहुँचे। मन्त्री ने उन को एक अंधेरी कोठरी में से गुजरकर राजा के सामने उपस्थित कराने का आदेश दिया। सब उम्मीदवार उसी रास्ते राजा के सामने उपस्थित हुए। मन्त्री ने उन लोगों से कहा, "तुम सब तत्काल तेज़ गति से मेरी दस बार परिक्रमा करो।"

एक व्यक्ति को छोड़ बाकी नौ लोगों ने परिक्रमा करने से इनकार कर दिया। मन्त्री ने उसी एक व्यक्ति की ओर इशारा करके राजा से निवेदन किया, "महाराज, यही व्यक्ति ईमानदार है। आप इस को करवसूली-अधिकारी के पदपर नियुक्त कीजिये।"

राजा ने आश्चर्य के साथ मन्त्री की ओर देखा। मन्त्री ने कहा, "प्रभु, ये लोग जिस अँधेरी कोठरी से चलकर आये हैं, उस में दो जगहों पर मैंने चमकने वाले चांदी के सिक्कों के ढेर लगवाये थे। इन नौ लोगों ने सिक्के अपने वस्त्रों में छिपाये रखे हैं, इसलिये इन्होंने तेज़ गति से मेरी परिक्रमा करने से इनकार किया, जिससे तेज़ चलते वक्त सिक्के आपस में टकराकर उनकी आवाज़ निकल सकती और उनकी पोल खुल जाती!"

इसके बाद जब उन व्यक्तियों की जाँच की गयी, तब मन्त्री का कथन सच साबित हुआ। राजा ने उस दसवें व्यक्ति को करवसूली अधिकारी नियुक्त किया।

तथास्तु देवता !

गोपवरम नामक गाँव में वीरनारायण नाम का एक किसान रहता था । उसकी पत्नी भानुमती बड़ी भली औरत थी । वीरनारायण जब भी मुँह खोलता, गालियों की बौछार ही उसमें से निकलती थी । शादी के बाद नववधु बनकर भानुमती जैसे ही ससुराल आयी, तब से पति के गाली-गलौज व डाँट-फटकार से घबराकर बुखार का शिकार हो गयी ।

ज्यों त्यों एक साल बीत गया । भानुमती ने एक दिन साहस बटोरकर अपने पति से कहा कि, आइन्दा वह हर बात पर उसे गाली न दे । इसपर गुस्से में आकर वीरनारायण बोला, "तुम्हारा मुँह जल जाए ! फिर कभी ऐसी बात मुँह से निकाली, तो तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा ।"

वीरनारायण की गालियाँ सुनाने की कला गाँव भर में चर्चा का विषय थी ।

एक साल नवरात्रि-उत्सव के संदर्भ में गाँव के केंद्रस्थान में स्थित दुर्गा मंदिर के सामने पुराण कथा-वाचन का आयोजन किया गया था । बहुत दूर से एक विद्या-वाचस्पति शास्त्री गाँव में पधारे थे । धर्मशास्त्र के ऊँचे ऊँचे सिद्धान्त वह जनसुलभ भाषा में समझाते । उनकी वाणी भी बडी रसीली थी । लोग सुनते तो मुग्ध हो जाते । आज रात को मंदिर में बड़ी भीड़ लगनेवाली थी । कई लोगों ने अपना रात का समय शास्त्रीजी का कीर्तन सुनने के लिए सुरक्षित रखा था ।

उस दिन रात को भोजन के समय वीरनारायण ने डपटकर अपनी पत्नी से कहा, "अरी गाद तलछट चेहरेवाली, जल्दी खाना परोस दो । पुराण कथा सुनने जायेंगे हम ।"

भानुमति ने संतोष से झटपट पति को खाना परोस दिया । खाना समाप्त कर वीरनारायण पलंगपर जा बैठा और अपनी पत्नी को जल्दी जल्दी तैयार होने के लिये गड़बड़ मचाने लगा ।

मंजु गुप्ता

है। इसलिये जहाँ तक संभव हो हमें मुँह से अच्छी बातें ही निकालनी चाहिये।"

वीरनारायण के कानों में हरिकथा-वाचक की ये बातें पडीं। वह पलंगपर से उठते हुए बोला, "अरी, तुम अभी रसोई-घर में पड़ी हुई हो? तुम तो निरी बेवकूफ़ और बुद्धु हो। मंदिर में शास्त्रीजी को सुनने के लिए सब लोग पहुँच गये। मैं कब से उधर जानेको तरस रहा हूँ। आज तुमको भी ले जाना है। तुम बस, काम में ही लगी रही हो। जल्दी कर, शीघ्र मंदिर में पहुँचना है।"

"अजी, मैं अभी मुँहहाथ धोकर आ जाती हूँ।" भानुमति ने कुएँ के पास से आवाज़ दी।

"हूँ, जल्दी करो। उधर कथा-वाचन शुरू हो गया होगा। अरी आलसी की छोकरी!"

भानुमति शीघ्र खाना रसोईघर साफ करने में लग गयी। दुर्गा-मन्दिर के निकट धीरे धीरे जनता का कोलाहल बन्द हुआ और हरिकथा वाचन का झनझनाता स्वर सुनाई देने लगा। "प्रेक्षक महाशयों, सुन लो कान खोलकर। हमारा मुँह है—स्वादिष्ट और स्वास्थ्य-वर्धक पदार्थ खाने के लिये, कठोर वचन सुनाने और गाली-गलौज बकने के लिये नहीं। गाली देने के पूर्व हर आदमी को उसके भले-बुरे के बारे में सोचना चाहिये। क्योंकि, कभी कभी पासही में 'तथास्तु देवता' रहते हैं और ऐसे में यदि वे 'तथास्तु' कह दें तो हमारी दी हुई गाली सच होकर निकलती

"मेरा चेहरा जल रहा है। हाय भगवान, मैं यह जलन सहन नहीं कर पा रही हूँ। जाने क्या हो गया है! जलन क्षण क्षण बढ़ती ही जा रही है। किसी अच्छे वैद्य के पास ले चलो। वरना मैं आज मर गई!" यों कहकर भानुमति अपने चेहरे पर पानी छिड़कते हुए चिल्लाती सुनाई दी।

भानुमति के चेहरे पर जलन बराबर बनी रही। इसपर वीरनारायण उसको अपने समीप के एक वैद्य के घर ले गया।

"वे खाना खा रहे हैं, थोड़ी देर बैठ जाइये।" वैद्य की पत्नी ने कहा।

पति-पत्नि दोनों चबूतरे पर बैठ गये। भानुमति अपने चेहरे की जलन सहन नहीं कर पा रही थी। दस-पन्द्रह मिनट बीत गये, पर वैद्य रसोई से बाहर निकलने का नाम नहीं ले रहा था।

इसपर खीझकर वीरनारायण अपनी पत्नी से बोला, "यह कोई वैद्य है या बकासुर ! कितनी देर खाना खा रहा है ! जल्दी बाहर आकर क्यों न लुढ़क पड़ता ?"

फिर क्या था, दूसरे ही पल में वैद्य तेज़ गति से बाहर आया, चबूतरे के निकट लुढ़क पड़ा और कराहने लगा। वैद्य की पत्नी अपने पति की यह हालत देख विलाप करने लगी।

इसके बाद वीरनारायण अपनी पत्नी को दूसरे वैद्य के पास ले गया। उस वैद्य ने भानुमति के चेहरे की जाँच कर वीरनारायण से कहा, "मेरी फीस पच्चीस रुपये दे दो।"

वीरनारायण चकित होकर बोला, "अजी, वैद्य साहब, पहले रोगी की जाँच कर के दवा तो दीजिये।"

वैद्य ने मौन होकर दीवार पर लटकते लकड़ी के तख्ते की ओर इशारा किया और चुपचाप घर के भीतर चला गया। उस तख्ते पर इस प्रकार लिखा हुआ था— "रोगी को देखनेपर फीस पच्चीस रुपये, जाँच के लिये पचास और इलाज के लिये सौ रुपये।"

वीरनारायण दाँत भींचकर जेब से पच्चीस रुपये निकालकर बोला, "इस की माँ का पेट जल जाए। इसने इलाज को व्यापार बना रखा है।"

इस बीच वैद्य ने वहाँ प्रवेश किया, पच्चीस रुपये लेकर भानुमति की जाँच शुरू की। इतने में वैद्य की माँ भीतर से चिल्ला उठी, "बेटा, जल्दी आ जा। मेरा पेट तवे जैसा जल रहा है।"

यह पुकार सुनकर वैद्य घर के भीतर चला गया। वीरनारायण १५ मिनट तक वैद्य का
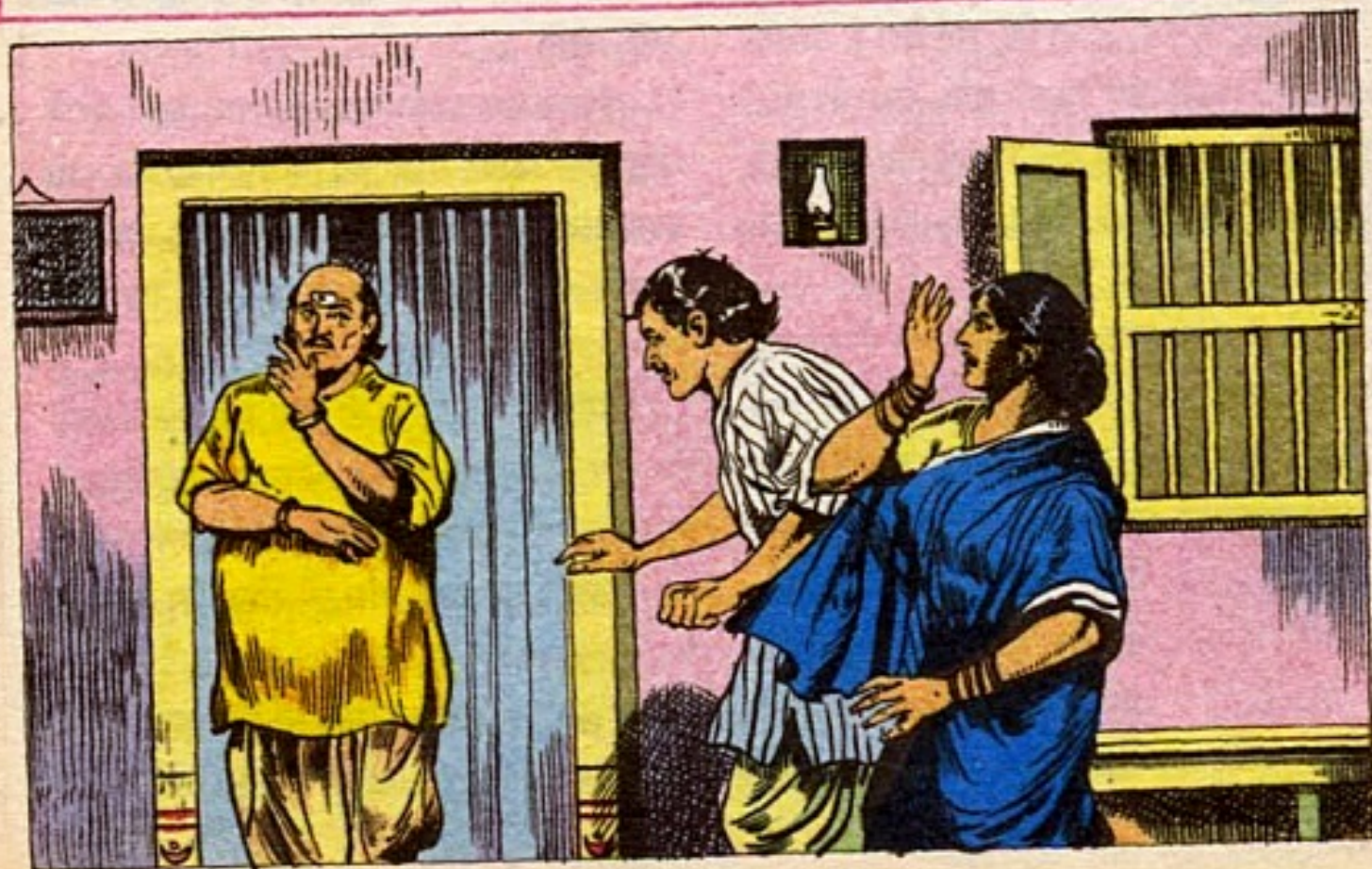
इन्तज़ार करता रहा, फिर अपनी पत्नी से बोला, "मेरी समझ में नहीं आता कि, यह वैद्य है अथवा व्यापारी । चलो हम किसी और वैद्य के यहाँ जायेंगे ।" यह कहकर जेब में बचे चालीस रुपये निकाल कर एक बार जाँच की, फिर वहाँ से निकल पड़ा ।

रास्ते में वीरनारायण की उसके मित्र शेषाचलम से मुलाकात हुई । वीरनारायण ने सोचा कि, इलाज के लिए शायद और रुपयों की आवश्यकता पड़े । उसने अपने मित्र को रोक कर पूछा, "सुनो यार, तुम्हारे पास रुपये हो तो दे दो; मैं कल सुबह तुम्हें घर पर पहुँचा दूँगा ।"

शेषाचलम ने अपने चेहरे पर व्यथा दिखाते हुए कहा, "तुमने ज़रूरत के लिए रुपये माँगे होंगे । मगर देखो, इस वक्त मेरी ज़ेब में रुपये नहीं है ।" यह कहकर वह आगे निकल गया ।

"पैसे रखते हुए भी यह कम्बख्त 'नहीं है' बता रहा है; चोर कहीं का !" वीरनारायण अपनी पत्नी से बोला ।

दूसरे ही क्षण शेषाचलम पीछे मुड़ा और वीरनारायण की गर्दन पकड़कर गरजते हुए बोला, "तुम्हारे पास जो कुछ रुपये हैं, उन को मेरे हवाले करो । नहीं तो तुम्हारी जान लूँगा ।"

वीरनारायण थरथर काँपने लगा और तुरन्त ज़ेब में से सारे रुपये निकालकर उसने शेषाचलम् के हाथ सौंप दिये ।

भानुमति ने इस ओर थोड़ासा भी ध्यान नहीं दिया; वह तो अपने दुख से चिल्ला रही थी । "भगवान्, मेरा चेहरा जल रहा है । मुझ से सहा नहीं जाता ।"

वीरनारायण अब तक ऊब गया था । उसने खीझकर अपनी पत्नी का कंधा पकड़कर उसे झकझोरते हुए डाँटा, "अरी एक और वैद्य को दिखाने के लिए ही तुम को ले जा रहा हूँ । चिल्लाओ मत, राक्षसी ।"

फिर क्या था! दूसरे ही क्षण भानुमति राक्षसी के रूप में बदल गयी । वीरनारायण चीखकर भागने लगा । राक्षसी उसका पीछा करने लगी ।

दौड़ते दौड़ते दोनों गाँव की सीमा पार कर एक आम के बगीचे में पहुँचे । वहाँ पहुँचने पर वीरनारायण ने पीछे मुड़कर देखा, तो उसे अपनी पत्नि दिखाई नहीं दी, बल्कि उसकी तरफ़ बढते

आने वाले दो देवता दिखाई दिये !

वीरनारायण ने भय एवम् संभ्रम में आकर उन से पूछा, "तुम लोग कौन हो ?"

"हम तो 'तथास्तु देवता' हैं।" देवताओं ने उत्तर दिया ।

अब वीरनारायण की समझ में आया कि, उस ने जो गालियाँ सुनायीं, उन के सत्य में परिणत होने का कारण क्या है ।

उसने तुरन्त उसकी ओर दौड़ी आनेवाली राक्षसी को दिखाकर उसने निवेदन किया, "मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिए। आइन्दा मैं अपने मुँह से गालियाँ नहीं निकालूँगा। मुझपर कृपा करके मेरी पत्नी के इस राक्षसी रूप से मुक्त कर दीजिए ।" इस प्रकार प्रार्थना कर के वह तथास्तु-देवताओं के चरणों में गिर पड़ा ।

"तथास्तु ! इसी क्षण से तुम्हारी पत्नी को न केवल अपने राक्षसी रूप से, बल्कि एक राक्षस जैसे पति से भी मुक्ति मिल जाएगी । बात-बात पर बिना किसी वजह से गालियाँ सुनानेवालों से सामनेवाले भले ही भय खाएँ; पर उसके प्रति आदर, प्रेम जैसे भाव कभी नहीं रखेंगे—यह बात तुम अच्छी तरह गाँठ बाँध लो ।" यह कहकर तथास्तु-देवता अदृश्य हो गये ।

राक्षसी रूप से मुक्त होकर भानुमति अपने पति के पास आयी और विस्मय से बोली, "अजी, तुम इधर उधर ताकते हुए काँप क्यों रहे हो ? यह तुम को क्या हो गया है ? किस से तुम इतना डर रहे हो ? इस अर्ध रात्रि के समय अपने गाँव की सीमा पार कर आम के इस बगीचे में हम क्यों आये हैं ?" घूमने-फिरने का यह तो समय नहीं है । जाने तुम्हें क्या हो गया है !

"वह सारी कहानी मैं तुम्हें बाद में सुनाऊँगा पहले तुम घर चलो ।" यह कहते हुए वीरनारायण पत्नी के साथ घर की ओर चल पड़ा ।

अपने सवाल पर सदा डाँटनेवाले शब्द—'अरी चुप, कंगालिन ।' न कहकर अपने पति को चुप देख भानुमति फूली न समायी और चुपचाप अपने पति के पीछे चल पड़ी ।

मुनि और शिकारी

किसी जंगल के समीप के गाँव में एक शिकारी रहता था। वह जंगल के जानवरों का निर्दयता पूर्वक शिकार करके अपना जीवन यापन करता था। जानवरों को मार डालते समय उसके मन में ज़रा भी दया-भाव पैदा न होता। हत्या करते समय उसे अत्यधिक आनन्द आता। इसलिए सब लोग उस को "निर्दयी" पुकारा करते थे।

एक दिन इसे एक भी शिकार न मिला। आखिर सारा जंगल छान कर वह किसी तरह से एक मृग-छौने का शिकार कर सका। उस शावक को कन्धे पर डालकर वह घर की ओर चल पड़ा।

रास्ते में उसे एक मुनि दिखाई पड़ा। उसने शिकारी को पुकारा, "बेटा, यहाँ आ जाओ।"

निर्दयी ने मुनि के समीप जाकर विनयपूर्वक पूछा, "स्वामिन्, आज्ञा दीजिए। बात क्या है ?"

"घावों से परेशान इस मृग-शावक को ज़रा जमीन पर लिटा दो।" मुनि ने कहा।

निर्दयी ने वह मृग-छौना मुनि के सामने रखा। मुनि ने कमण्डलु का थोड़ा सा जल उसके शरीर पर छिड़क दिया। मुनि के कमण्डलुवाले जल में जाने क्या जादू थी। कुछ ही क्षणों में मृग-छौना तरो-ताज़ा हो गया। इधर-उधर घूमने-फिरने लगा, मानो जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

मृग-छौना तत्काल मनुष्य की बोली में कहने लगा, "महाशय, मुझे छोड़ दो। मेरे मातापिता की मैं इकलौती सन्तान हूँ। मेरा इन्तज़ार करते करते रो-रोकर वे दोनों अबतक बेहोश हुए होंगे। और तुम भी पुत्र-वात्सल्य से खुद अपरिचित नहीं होंगे न ? तुम्हारा बच्चा अगर तुम्हें दिखाई न दिया तो क्या तुम चैन की नीन्द सो सकोगे ?"

ये शब्द सुनकर निर्दयी को अपने बच्चों की याद आयी। वह प्रतिदिन निर्दयता से जो हिंसा करता था, वह केवल अपने बच्चों के लिए ही तो

महेश वर्मा

थी। जैसे उसे अपने बच्चे प्यारे होते हैं न !

इस विचार के आते ही निर्दयी ने तत्काल मृग-छौने के बन्धन खोल दिये, किसी पत्ते का रस उसके घावपर निचोड़कर उसका इलाज किया। और उसे अपने मातापिता के पास जाने के लिए छोड़कर खुद खाली हाथ घर पहुँचा। उस दिन उसके घर के लोगों को भूखा रहना पड़ा।

दूसरे दिन निर्दयी फिर एक हिरन का शिकार कर के उसे अपने कंधे पर लादकर गाँव की ओर जा रहा था। पुनः उसे वही मुनि मिल गया। उसने निर्दयी को बुलाकर उस हिरन पर भी कमंडलु का पानी छिड़क दिया।

वह हिरन मनुष्य की बोली में याचना करने लगा, "महानुभाव, मेरी पत्नी पूर्ण गर्भवती है। वह हिलने डुलने की स्थिति में नहीं है। उस के आहार की व्यवस्था करने के लिए मैं घूम रहा था, तभी तुम मेरा शिकार करने लगे यह कहाँ का न्याय है ? तुम्हारे जैसा मैं भी एक प्राणी हूँ—इस विचार से ज़रा सोचे तो।"

ये बातें सुनकर निर्दयी को वह प्रसंग याद आया, जब उसकी पत्नी गर्भवती थी तब उस के कष्ट देखकर उसे कैसे दुख होता था इस बात की याद से ही अब निर्दयी का मन विचलित हो उठा। हिरन को छोड़कर वह घर पहुँचा, तो देखता क्या है—भूख से व्यथित हो कान्तिहीन नेत्रों से बड़ी आशा के साथ उसके बीबी-बच्चे उसकी ही राह देख रहे थे !

उन्हें देखते ही निर्दयी का दिल द्रवीभूत हो उठा। वह विरक्त भाव से पुनः जंगल को लौट पड़ा और मुनि के दर्शन कर उन्हें उसने निवेदन

किया, "स्वामिन् आपकी वजह से मेरे मन में दया-धर्म की भावनाएँ जागृत हो गयी हैं। अब मैं शिकार नहीं कर पाता। इस से मेरे बीबी-बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। इस दारुण दृश्य को मैं देख नहीं पाता हूँ। और इस के कारणभूत आप हैं—आप ही के सामने अब फाँस लगाकर प्राण देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।"

इसपर मुनि मन्दहास करके बोला, "मेरा उद्देश तुम्हें जीव-हिंसा से विमुख करना मात्र था। मेरा अभिप्राय भूखा रहकर प्राण देना—यह कदापि नहीं था। लेकिन इस संसार में तुम्हारे जीने के लिए केवल शिकार यही एक मार्ग है—यह तुम्हारा विचार ग़लत है।

"स्वामिन्, दूसरा कोई मार्ग हो तो बताने का कष्ट करें।" निर्दयी ने हाथ जोड़कर पूछा।

इसपर आश्रम के आसपास चरनेवाली कुछ गायों को दिखाकर कहा, "देखो, उन में से तुम तीन दुधारु गायों को हांक ले जाओ; उनकी खूब परवरिश करो और उन से जो दूध मिलेगा, उस से अपने दिन आराम से काटो।"

मुनि की बातों से निर्दयी अत्यन्त संतुष्ट हुआ। फिर तीन गायों को हांककर अपने गाँव जा पहुँचा।

शिकारी को जंगल से गायों के साथ लौटने देखकर ग्रामवासी आश्चर्य में आ गये।

निर्दयी ने उन को सारा किस्सा सुनाकर कहा, "आज से मैं जीव-हिंसा बन्द कर रहा हूँ।"

इसपर गाँववाले बहुत प्रसन्न हुए। कुछ लोगों ने शिकारी को मवेशी-खाना बनाने के लिए आवश्यक बांस दिये, तो कुछ लोगों ने घास-फूस आदि दिया।

इस प्रकार शिकारी निर्दयी पशुपालक के रूप में बदल गया। उस का परिवार अब बड़ी सूझ-बूझ के साथ गायों के पोषण में लग गया। सब मिलकर सदा इस बात का खयाल रखते थे कि गायों की परवरिश में कोई कमी न रहते पाये। दूध समीप के शहर में बेचकर सुखपूर्वक अपनी ज़िन्दगी बिताने लगे।
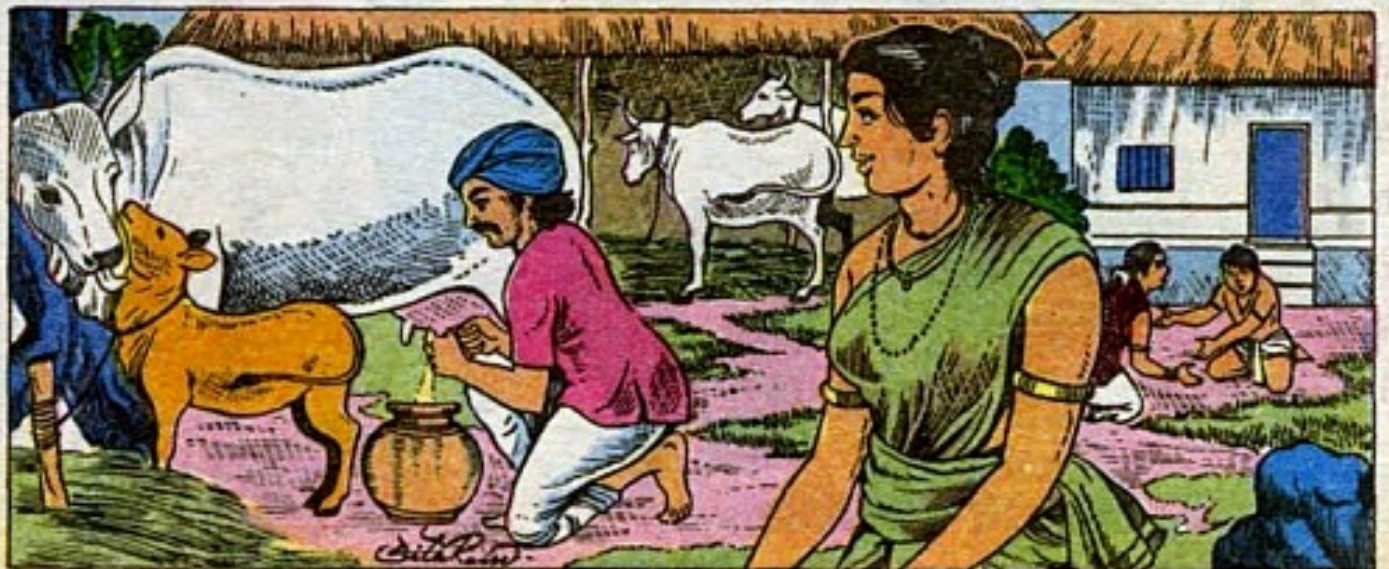
[१०]

[सोने की घाटी के राज्य में प्रवेश कर एक मांत्रिक ने राजा को धोखे से स्वर्ण प्रतिमा के पीछे की गुफा में बन्दी बनाया। राजा के वस्त्र और आभूषण पहन कर वह गुफा से बाहर आया। अद्भुत जलप्रतात को पार कर जयराज मुनि की मदद से मानव लोक की सीमा पर स्थित स्वप्नभूमि में पहुँचा और वहाँ उसने एक विचित्र दृश्य देखा। आगे पढिये।]

समीप की खाई में एक विकृत स्वरूपी प्राणी अपने हाथ में एक लम्बी नली पकडे हुए नज़र आया। उसके सामने बड़ी गेन्द की आकृति की एक वस्तु थी। प्राणी के हाथ की नली का दूसरा छोर उस गेन्द से जुड़ा हुआ था। अपने हाथ की नली का छोर दाँतों में कसकर पकड़कर वह प्राणी उस में फूँक लगा रहा था। ऐसे करते समय उसके मुँह में एक अनोखी रोशनी दमक रही थी!

गेन्द थोड़ी देर में रक्त की भाँति लाल और फिर थोड़ी देर में काजल जैसी काली बनकर एक प्रकार का धुआँ छोड़ने लगी। वह विचित्र जीव आगे की ओर झुककर उस धुएँ को खींचने लगा। उस की आँखें उल्लू की आँखें जैसी चमक रही थी।

"महात्मन्, यह विचित्र दृश्य क्या है?" जयराज ने मुनि से पूछा।

"यह घाटी स्वप्नभूमि का एक हिस्सा है। पृथ्वी

मनोज दास

पर जनता जो स्वप्न देखती है, वे यहाँ प्रतिबिंबित होते हैं। एक ही प्रकार के सपने संक्षिप्त होकर एक विशेष रूप धारण करते हैं। इस समय तुम जो देख रहे हो, वह कई हज़ार स्वप्नों का संक्षिप्त रूप है। अपने को अत्यन्त बुद्धिमान समझनेवाले वज्रमूर्खों के स्वप्नों का यह रूप है। ऐसे सपने देखने वाले लोग इस विश्व को विषमय बना देते हैं। धनार्जन करने के लिए ये लोग गलत तरीके अपनाते हैं। आहार-पदार्थों में मिलावट करते हैं और अन्याय पूर्वक वस्तुओं के भाव बढ़ाकर भोली भाली जनता को लूटते हैं। लाभार्जन करने की खुशी में वे फूले नहीं समाते। उनके लिए धन ही सब कुछ है। वे धन को परम आराध्य देवता हैं। धन के सिवा अधिक मूल्यवान उनके लिए कुछ नहीं। पाप, अन्याय, अधर्म, अनीति किसी की वे परवाह नहीं करते। धन-संग्रह करते हुए किसी भी बुरे मार्ग का अवलंबन वे सहज करते हैं। अपने स्वार्थ-साधन के लिए वे दूसरे का गला घोंट सकते हैं। कानून को जो मंजूर नहीं ऐसे काम करने में वे ज़रा भी नहीं हिचकते। अर्थ ही उनके लिए सब कुछ है। पैसा प्राप्त होने पर उनको सुख होता है, और आर्थिक हानि होने पर दुख। अर्थ ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य होता है। देखो, वह प्राणी कैसे प्रफुल्लित दिखाई दे रहा है।" मुनि ने कहा।

जेयराज ने पुनः घाटी की ओर दृष्टि दौड़ायी। वह विकृत आकृतिवाला प्राणी परमानंदित हो धुआँ खींचते हुए, सूअर की भाँति गुर्रा रहा था। ज्यों ज्यों वह धुआँ खींचता त्यों त्यों उसका पेट मिट्टी के बर्तन जैसा फूल रहा था। क्रमशः खुशी के स्थान पर उसके चेहरे पर पीड़ा नज़र आने लगी।

"लगता है, वह किसी प्रकार की पीड़ा अनुभव कर रहा है। आखिर वह क्यों इतना दुखी है? दुखियों के दुख दूर करने की यहाँ कोई व्यवस्था नहीं है क्या? उसकी पीड़ा देख मुझे भी दुख हो रहा है।" जयराज ने कहा।

"हाँ, असहनीय पीड़ा हो रही है उसे! जो लोग दूसरों की हितकामना नहीं करते, उन लोगों की ऐसी ही दुर्गति हो जाती है। ऐसे लोग शुद्ध हवा का सेवन भी नहीं कर सकते। शीतल जल का आस्वाद वे नहीं ले पाते। ठंडे पानी से स्नान

करने का आनंद उन्हें मयस्सर नहीं बढ़िया संगीत उनके दुख के भार को हल्का नहीं कर सकता। जो खाते हैं, वह हजम नहीं होता। एक न एक बीमरी के शिकार हो जाते हैं। फिर दवाइयाँ ही उनकी खुराक !" मुनि ने कहा।

थोड़ी देर बाद वह प्राणी नीचे गिरकर छटपटाने लगा। जयराज उस दृश्य को देख न पाया, उसने अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली।

उस ओर उसने देखा कि वहाँ ज़मीन पर से विचित्र कान्ति-रेखाएँ बाष्प की भाँति ऊपर की ओर प्रसारित हो रही हैं। उन कान्ति-रेखाओं से सटकर एक विशाल वटवृक्ष खड़ा था। एक ही कान्तिरेखा उस वृक्ष की ऊँची टहनी तक फैल रही थी। फिर भी गीध जैसे कुछ विचित्र पक्षी अपने पंख फड़फड़ाकर उस काँतिरेखा को ऊपर प्रसरित होने से रोक कर, बुझाने की कोशिश कर रहे थे।

"वहाँ का प्रकाश जनता की हित-कामना करने वाले लोगों के सपनों का संकेत है। दुर्बल व्यक्तियों के सपने अधूरे ही रह जाते हैं।" मुनि ने कहा।

"कान्ति-रेखाओं को फैलने से रोकनेवाले उन पक्षियों के बाबत क्या है ?" जयराज ने पूछा।

"जनता की सुखसुविधाओं पर ईर्ष्या करने वाले दुष्ट व्यक्तियों का संकेत हैं ये पक्षी। उन दुष्ट शक्तिओं को निष्फल बनाना हों, तो और अधिक दृढ निश्चय के साथ लड़ना होगा।" मुनि ने समझाया। फिर थोड़ी देर मौन रहकर मुनि बोला,

"अब हमें संतुष्ट, शांत भूमि में प्रवेश करना है। इसके लिए एक ही छलाँग में इस खाई को

पार करना होगा। क्या तुम पार कर सकते हो?" मुनि ने पूछा।

"आप की कृपा हो, तो मैं अवश्य पार कर सकता हूँ। आपकी सदिच्छाएँ और आशीर्वाद के बल पर मैं कठिन से कठिन काम भी सहज कर सकता हूँ। चलिए न, हम दोनों साथ साथ छलांग लगाते हैं। अगर मुझे कुछ दिक्कत हुई, तो आप मेरे साथ हैं ही !" जयराज ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

"अच्छी बात है। ऐसा आत्मविश्वास हो, तो महान से महान कार्य भी साधा जा सकता है। तुम मेरे पास आओ। मेरा हाथ पकड़कर आपनी सारी शक्ति बटोरकर मेरे साथ ही आगे की ओर कूद पड़ो।" यह कहकर मुनि ने जयराज का हाथ थाम लिया।

जयराज आँखें बन्द कर मुनि के कथनानुसार आगे की ओर कूद पड़ा। वर्षा की बूँद जैसे बड़ी सरलतापूर्वक जयराज घाटी के उस पार पहुँचा। पहुँचकर जब उसने आँखें खोलकर चारों ओर दृष्टिपात किया तो दिगंत तक सुंदर उद्यान विविध रंगों से इंद्रधनु जैसा प्रतीत हो रहा था; पक्षी कलरव कर रहे थे। मन्द पवन जयराज के मन को मोहने लगी। विभिन्न वर्ण के पुष्पों जैसे मेघ उसके सिर के समीप मँडरा रहे थे। मुनि के लिए उसने चारों तरफ देखा, पर मुनि का कहीं भी पता नहीं था! साधारण रूप में ऐसी हालत में जयराज मुनि के लिए चिन्ता में डूब जाता, मगर इस वक्त उस के मन में किसी प्रकार की चिन्ता न थी। जयराज ने समझ लिया कि वहाँ का वातावरण चिन्ता व दुख से अतीत है। उस प्रशान्त वातावरण में जयराज का मन पुलकित हो उठा। अब वह अपने बचपन में सीखे गीतों को मधुर स्वर में आलापने लगा। उस सुरम्य वातावरण में उसके गीत मधुरतर बन गये। वह स्वयं अपने कंठ से निकलनेवाली स्वर-मालिक पर झूम रहा था, ऐसे स्वर्गीय स्थान को आज तक शायद ही उसने देखा था। थोड़ी ही देर में सूर्योदय हो गया। ऐसा उदीयमान सूर्य उसने पहले कभी नहीं देखा था। सूरज की सुनहरी किरणों ने सर्वत्र फैलकर सारे वातावरण को और ही सुंदर बना दिया। हरे-भरे उद्यानों में फैले सुनहरे प्रकाश में बहनेवाली मंद मंद हवाएँ शरीर को रोमांचित कर

देती । विनोद ने गीत गाते हुए पीछे की ओर मुड़कर देखा तो वहाँ एक अनुपम सौन्दर्यवती बैठी हुई थी । उसे अचानक वहाँ देख जयराज अपना गाना बन्द कर उसकी ओर एकटक देखने लगा ।

"कृपया गीत बन्द न करो, गाओ न! तुम्हारा मधुर गीत सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । तुम्हारे कंठ में मानो कोई जादू है । दरअसल तुम्हारे संगीत के सुर मुझे यहाँ बरबस खींच लाये हैं । क्यों तुमने गाना बंद किया ? युवक, तुम्हारे कंठ के सुरों से इस भूमि को आप्लावित करो ।" वह युवती अनुनय करने लगी ।

विनोद फिर भी उसकी ओर ताकते थोड़ी देर जडवत् खड़ा रहा ।

"यह तो बड़ा आश्चर्य मालूम होता है ।" जयराज ने कहा; मानो वह स्वगत बोल रहा हो ।

"आश्चर्य क्या है?" युवती ने पूछा ।

"मैं तुम्हें पहली ही बार देख रहा हूँ, फिर भी तुम्हारा हास मुझे चिरपरिचित सा लग रहा है । तुम कभी हमारे सोने की घाटी वाले राज्य में गयी थी ।" जयराज ने पूछा ।

युवती खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, "नहीं, इस सुन्दर घाटी को छोड़ कहीं और जाने की ज़रूरत ही मुझे कभी महसूस नहीं हुई । पर क्या तुम्हें यह घाटी सुन्दर नहीं प्रतीत होती ?"

"सुन्दर ! उफ् ! इससे बढ़कर सुन्दर उद्यानों की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता । मगर मुझे इस समय एक बात याद आ रही है—मैं अक्सर हमारी राजधानी नगरी को छोड़ जंगलों में जाकर वहाँ की झाड़ियों व भग्नावशेषों के बीच खेलते हुए अपना जीवन बिताया करता था । उसी समय एक विचित्र सा पक्षी वहाँ इस प्रकार प्रवेश करता था, मानों वह आकाश के मेघों के बीच से उतर आया हो । वह एक वृक्ष की डाल पर बैठ जाता और कहता— 'सूदूर तट पर रहनेवाली युवरानी, युवरानी' । और उस समय मन्द मन्द मुस्काने वाली एक युवती का चेहरा मेरी आँखों के सामने अस्पष्ट रूप में झलक जाता । अभी तुम्हें यहाँ देखने पर मुझे उस युवती का स्मरण हो रहा है ।" जयराज ने कहा ।

"ऐसी बात है ! मैं इस भूमि की युवराज्ञी हूँ । मैं जब सो जाती हूँ, तब अक्सर मुझे कोई

गीतालाप सुनाई देता है। वह गीत और अभी इस वक्त तुम जो गीत गा रहे हो, यह एक जैसा है। मैं ने भी इस प्रकार के स्वर आलापने की बहुत कोशिश की, लेकिन संभव न हुआ। बुजुर्गों ने बताया है, कि इस भूमि के उस पार एक देवता है, उस देवता से वर प्राप्त करने पर ही ऐसा गाया जा सकता है। फिर भी यहाँ के लोगों को उस देवता के दर्शन करने जाना असंभव है।" युवरानी ने चिन्ता पूर्ण स्वर में कहा।

"मैं तो केवल एक सादा सा गीत गा रहा हूँ न ?" जयराज ने कहा।

"हाँ, गीत ही। जीवनभर में एक बार भी तुम्हारे जैसे आलाप कर सकूँ तो पर्याप्त है। मैं अपने जन्म को धन्य समझूँगी।" युवरानी ने कहा।

"तुम्हारा तो बोलने का स्वर भी अत्यन्त मधुर है, फिर भी तुम गा क्यों नहीं सकती ?" जयराज ने विस्मय में आकर पूछा।

मैं ही क्या, यहाँ का कोई भी व्यक्ति गा नहीं सकता। इस प्रकार गाने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं है। पर मैं समझती हूँ कि इस भूमि में मेरे सिवा इस प्रकार गाने की कामना भी कोई नहीं करता है।" युवरानी बोली।

जयराज आश्चर्य में आकर एक शिलापर बैठ गया और युवरानी उसके सामने बैठ गयी। इस का रूप तो मूर्त रूप धारण किये हुए दिव्य गीत जैसा है, फिर भी बेचारी खुद गा नहीं सकती।

जयराज को मुनि की बताई यह बात याद हो आयी कि, यहाँ के लोग साधारण प्राणी नहीं है। मनुष्य को छोड़ और किसी प्राणी को बोलनेकी शक्ति भी प्राप्त नहीं है। फिर भी कुछ मनुष्य सही ढंग से न बोलकर साँपों जैसे फुफकारते हैं, बन्दरों जैसे झगडते हैं और कुछ तो वार्तालाप के बहाने कुत्तों जैसे भोंकते हैं।

जयराज समझ गया कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य कैसे भाग्यवान हैं। मनुष्य मज़े में हँस सकता है, सुन्दर ढंग से गा सकता है, अनेक अद्‌भुत साध सकता है। फिर भी अपने भीतर के अज्ञात के कारण वे अपनी इन शक्तियों का सही ढंग से उपयोग नहीं कर पाते। ये बातें मुनि ने कभी जयराज से कही थीं। अब वे सारी बातें उसे सही प्रतीत हुई।

"युवरानी, तुम जिस देवता की बात कर रही हो, उसी के दर्शन के लिये मैं यहाँ आया हूँ। फिर भी मैं यह नहीं जानता कि वह देवता कहाँ पर है और उस तक पहुँचने का मार्ग कौन सा है। यदि तुम वह मार्ग बता सकोगी तो मैं उस देवता के द्वारा वर प्राप्त कर के तुम्हें गाने योग्य बना दूँगा।" जयराज ने उत्साह में आकर कहा।

"मैं भी तुम को एक रहस्य बता दूँगी। इस नील पर्वत के शिखर पर एक विचित्र पौधा है। इस में सालभर में एक ही फल आता है, उस फल को नक्षत्र-फल कहते हैं। उस फल का सेवन करनेवाला इस भूमि को पार करके देवता के स्थान पर पहुँच सकता है।" युवरानी ने उत्तर दिया।

"तो तुमने आज तक वह फल क्यों नहीं खाया ?" जयराज युवरानी से पूछ बैठा।

प्रश्न सुनकर युवरानी हँस पड़ी और बोलीं, "तुम मानव लोग जैसे अनेक प्रकार के आहार ग्रहण करते हो, वैसे हम आहार नहीं लेते।"

"तो फिर तुम लोगों को आवश्यक शक्ति भला कैसे मिलती है और तुम्हारा विकास कैसे होता है ?" जयराज ने आश्चर्य से पूछा।

"फूल जैसे विकसित होता है। उसी ढंग से हम बढ़ते हैं। सूर्य के प्रकाश से हमें आवश्यक शक्ति प्राप्त होती है। इसलिये हम भूख-प्यास से परे होते हैं। तुम भूख लगने पर जैसे अन्न, फल आदि खाते हो, वैसे हम नहीं खाते। यही इस देश की एक प्रमुख विशेषता है। समझे ? इतना ही क्यों, तुम्हीं बताओ, क्या तुम्हें इस वक्त भूख महसूस हो रही है ?" युवरानी ने पूछा।

"हाँ, बात सच है कि इस वक्त मुझे भूख नहीं है। पर चाहे तो बिना भूख लगे ही उस फल को खाया तो जा सकता है न !" जयराज ने कहा।

"संभव नहीं; क्यों कि इस भूमि पर जो कार्य अनावश्यक है, उन्हें कोई चाहने पर भी कर नहीं सकता है।" युवरानी ने स्पष्ट कह दिया।

उसी समय वहाँ एक हिरन दौड़ता हुआ आ पहुँचा।

मारणास्त्र

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से लाश को उतारा और उसे अपने कंधे पर डालकर हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा— "राजन्, यह देखकर मुझे आश्चर्य के साथ दुख भी होता है कि एक देश के राजा होते हुए आप कुछ क्षुद्र शक्तियों को प्राप्त करने के लिए श्रमिक कापालिक की भाँति इस अर्ध रात्रि के समय शमशान में विचरण कर रहे हैं। आप किसी कठिन कार्य की साधना में लगे हैं अवश्य पर विवेकशील व्यक्ति किसी कठिन कार्य को संपन्न करने के लिए इस से भी अधिक कठिन रीतियों व साधनों का आश्रय नहीं लेता, तैरने की कला में प्रवीण व्यक्ति आसानी से मिलनेवाली नाव को छोड़ नदी पार करने का प्रयत्न नहीं करता वह ऐसा करें तो अविवेकी ही समझा जाएगा। नागेंद्र वर्मा नाम के एक राजा ने ठीक ऐसा ही काम किया। श्रम को भुलाने के लिए मैं आप को

बेताल कथा

उसकी कहानी सुनता हूँ। सुनिएगा।''

मलय देश पर राजा नागेंद्र वर्मा राज्य करते थे। धीरे धीरे उस राज्य में अराजकता बढ़ती गई, यहाँ तक कि दिन-दहाड़े लूट-मार, खून-खराबा और आग लगाये जाने के दृश्य दिखाई देने लगे। जनता में सर्वत्र अशान्ति फैल गयी थी। लोगों को हमेशा भय लगा रहता था। औरतें कहीं इक्की-दुक्की घूम भटक नहीं सकती थी। राजा को भी इससे बड़ी चिन्ता हुई। भेदियों के द्वारा राजा को मालूम हुआ कि सिंधु देश के गुप्तचर छिपे-छिपे उसके राज्य में प्रवेश कर राजद्रोहियों से मिलकर ये सारे कारनामे कर रहे हैं।

एक दिन की बात है। इस विद्रोह पर नियंत्रण पाने की दृष्टि से राजा अपने मंत्री मयूराक्ष से सलाह-मश्विरा कर रहे थे। मयूराक्ष ने राजा से कहा— ''स्वामी, मुझे लगता है कि बाहरी देश के कुछ कुटिल लोग आकर हमारे लोगों को भड़का रहे हैं। उनका मुकाबला करनेके लिए हमें अपना गुप्तचरों का दल अधिक सक्षम करना चाहिए। लगता है, हमारे गुप्तचर बहुत शिथिल हो गये हैं।'' उस समय एक राजभट ने अन्दर प्रवेश किया और सूचना दी कि एक विदेशी व्यापारी उनके दर्शन के लिए आया है। राजा ने आदेश दिया कि उस व्यापारी को उनके पास ले आया जाए।

विदेशी व्यापारी ने भीतर प्रवेश करके नम्रता के साथ राजा को प्रणाम किया और निवेदन किया—''महाराज, मैं कांभोज राज्य का एक व्यापारी हूँ। मेरे व्यवसाय के सिल-सिले में चार दिन पहले मैं इस नगरी में पहुँच गया हूँ। मैं ने जान लिया है, आप अपने राज्य में शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए किस प्रकार प्रयत्नशाली हैं। मैं आपको दिखाने के लिए एक अस्त्र लाया हूँ। हो सकता है यह आप के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो।'' यह कहते हुए व्यापारी ने एक लंबी नली जैसा अस्त्र राजा के हाथ में धर दिया।

राजा नागेंद्र वर्मा ने अस्त्र को हाथ में लेकर उसको भली भाँती परख कर देखा और पूछा—''बताएँगे इस अस्त्र की क्या विशेषता है ? मुझे यह बिलकुल ही मामूली दिखाई देता है। अगर मेरे पास यह अस्त्र हुआ तो मैं उसका कैसे

उपयोग कर सकता हूँ ? मेरी समस्याओं को हल करने में यह कैसे उपयोगी सिद्ध होगा ?"

व्यापारी ने अस्त्र की जानकारी देते हुए कहा—"महाराज, इस नली के तल में एक घुंड़ी लगाई गई है। उसे अंगूठे से दबाने पर इसमें से सूई जैसा तेज़ तार तीव्र गति से बाहर निकल आता है । वह हमारे निशाने तक पहुँचते ही—चाहे वह मनुष्य हो या जानवर—उसको हताहत कर देता है ।"

आश्चर्य के साथ राजा कुछ कहने ही वाले थे कि मंत्री बोल उठा—"प्रभु, इस अस्त्र की शक्ति की अच्छी तरह जाँच करने के बाद ही इसे खरीदना उचित होगा । यदि यह व्यापारी एक-दो दिन बाद आकर हम से मिले तो हम अपना निर्णय उसे बता सकते हैं ।"

मंत्री की उचित सलाह राजा ने मान ली । अस्त्र को राजा के पास छोड़कर व्यापारी चला गया ।

उसी दिन रात को राजा नागेंद्र वर्मा अपने शय्यागृह में गहरी नींद सो रहे थे । अर्ध रात्रि के समय किसी की आहट पाकर यकायक उनकी नींद खुली । तत्काल बिछाना छोड़कर राजा ने गरज कर पूछा—"कौन है वहाँ ? बताओ तो ।"

तलवार हाथ में लिए दो नक़ाबपोश व्यक्ति राजा की ओर बढ़ने लगे ।

उसी समय राजा को अपने तकिये के नीचे सुरक्षित मारणास्त्र की याद हो आई । राजा ने

अस्त्र अपने हाथ में लेकर एक के बाद एक नक़ाबपोश व्यक्तियों की ओर निशाना लगाकर घुंड़ी दबायी । दोनों ज़ोर से चीखकर नीचे गिर पड़े और गतप्राण हो गये ।

कोलाहल सुनकर राजभट तथा राजा के कुछ सेवक दौड़े दौड़े वहाँ पर पहुँच गये । जाँच करने पर मालूम हुआ कि दो मृत व्यक्तियों में एक राजा का अंगरक्षक है । मारणास्त्र की अद्‌भुत शक्ति देखकर सोच में डूबे राजा खड़े ही रह गये ।

दूसरे दिन विदेशी व्यापारी राजा से मिलने आया तब राजा ने उस से पूछा—"तुम ने कल जो मारणास्त्र दिया, उसकी अद्‌भुत शक्ति देखकर हम प्रसन्न हो गये । ऐसे अस्त्र हमको हज़ारों की संख्या में चाहिए । दे सकेंगे ?"

व्यापारी ने खुश होकर कहा—"अगर आप मेरे लिए आवश्यक सामग्री और सहायकों का प्रबंध करेंगे तो मैं आवश्यक संख्या में ऐसे अस्त्र बनाकर दे सकता हूँ। लेकिन उसका उचित मूल्य आप मुझे दे देंगे ?"

व्यापारी के प्रस्ताव को राजा स्वीकृति देनेवाले थे, बीच में मंत्री बोल उठा—"महाराज, मैं इस व्यापारी से कुछ सवाल करना चाहता हूँ। कृपया अनुमति देंगे ?"

राजा ने स्वीकृति देते हुए सिर हिलाया। मंत्री ने व्यापारी से पूछा—"आपके देश में ऐसे मारणास्त्र बनानेवाले कितने लोग हैं ?"

व्यापारी ने जवाब दिया—"मेरे सिवा और भी कुछ लोग हैं अवश्य ! पर फ़ायदा ही क्या ? हमारे देश के राजा ने इस अस्त्र के बनाने पर प्रतिबंध लगा रखा है।"

"आप के राजा को शत्रु-राजाओं से भय नहीं है क्या ?" मंत्री ने सवाल पूछा।

"है ! नहीं क्यों ?" व्यापारी ने कहा।

"आप के देश में अराजकता नहीं फैली है?" मंत्री ने फिर पूछा।

व्यापारी ने जवाब दिया—"है ! पर इस राज्य में जितनी है, उस से कम !"

मंत्री ने राजा की तरफ़ मुखातिब हो कहा—"प्रभु, आप सुन रहे हैं न ? कांभोज के राजा ने इस मरणास्त्र के निर्माण पर प्रतिबंध लगाया है। उस देश का नागरिक यह व्यापारी ऐसे अस्त्र तैयार करके हमें बेच पैसा कमाना चाहता है।"

राजा नागेंद्र वर्मा मंत्री की बातें सुनकर थोड़ी देर मौन रहकर सोचते रहे, फिर उन्होंने अपने हाथ का मारणास्त्र तोड़कर दूर फेंक दिया। राजा ने मंत्री से कहा—"इस व्यापारी को पुरस्कार के रूप एक हज़ार मुद्राएँ दिलाने का प्रबंध हो।" इस के बाद राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि वे उस व्यापारी को राज्य की सीमा के बाहर करवा दें।

मंत्री ने राजा के आदेश का पालन किया। फिर अपने राज्य की अराजकता तथा शत्रुओं के भेदियों के षड्यंत्र दबाने का काम राजा ने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। राजा ने राज्य भर में सर्वत्र घूमकर जनता में देशभक्ति तथा एकता की

आवश्यकता का प्रचार किया। इस के फलस्वरूप देश में शांति और सुरक्षा स्थापित हुई।

यह कहानी सुनाकर बेताल ने पूछा—"राजन विदेशी व्यापारी द्वारा निर्मित मारणास्त्र खरीदकर नागेंद्र वर्मा अपने सैनिकों में उन्हें बाँट कर शत्रु का सफलता से मुकाबला कर सकते न? मुझे शंका होती है फिर उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? इसी प्रकार इन अस्त्रों को आत्मरक्षा के हेतु भी जनता में बाँट सकते थे। यह काम बड़ा सरल था। पर राजा ने ऐसा न करके बड़ी मेहनत से देश भर में घूम कर देशभक्ति का प्रचार किया, इस का भला क्या कारण है? इस मेरी शंका का समाधान जानकर भी आप न देंगे, तो आप का सिर फट कर उसके टुकड़े टुकड़े हो जाएँगे।"

इस पर विक्रमादित्य ने उत्तर दिया—"मारणास्त्र के सौदे को अस्वीकृत करते हुए नागेंद्र वर्मा ने बड़ी राजनैतिक चातुरी का परिचय दिया। इससे उनका मनोविज्ञान का ज्ञान भी मालूम होता है। मंत्री के द्वारा विदेशी व्यापारी से पूछे गये प्रश्न और उनके उत्तर इस कार्य में सहायक सिद्ध हुए। दुनिया में शायद ही कहीं ऐसा देश होगा जिसको शत्रु का भय न हो। वैसे ही शायद ही कोई समाज होगा जहाँ लोगों को आत्मरक्षा की आवश्यकता न होती है। इन समस्याओं का हल जनता में मारणास्त्र बाँटने से नहीं हो सकता। इस से अराजकता और बढ़ेगी। समाज से शान्ति नहीं अशान्ति दिन-ब-दिन फैलाती जाएगी।

विदेशी व्यापारी ने कांभोज के राजा का जो स्वानुभव बताया उससे यही साबित नहीं होता? यदि सब लोगों को मारणास्त्र सहज उपलब्ध हों, तो लोग छोटे-मोटे झगड़ों और मनमुटाओं को हल करने के लिए इसका उपयोग करेंगे। इस बात को भली भाँति जानकर ही नागेंद्र वर्मा ने परिश्रम के साथ जनता में देशभक्ति और एकता का प्रचार किया। यह उनकी बुद्धिमानी है।"

इस प्रकार राजा के मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

अधूरी इच्छा

धर्मपुरी नामक गाँव में सोमसुंदर नाम का एक गृहस्थ रहता था। गाँव में ही उस की एक पंसारी दूकान थी। वह देवताओं के प्रति श्रद्धा, भक्ति और गरीबों के प्रति सहानुभूति रखनेवाला आदमी था। उसकी पत्नि कामेश्वरी भी एक आदर्श गृहिणी थी।

एक दिन दोपहर सोमसुन्दर के मकान के सामने कृपानन्द नाम का एक संन्यासी आ खड़ा हुआ, उसने पूछा, "क्या तुम एक जून का खाना देकर मुझे आतिथ्य दे सकते हो ? हम संन्यासी घुमकड धर्मी है। किसी स्थान पर दो दिन से अधिक नहीं रहते और किसी एक घर में दो बार खाना नहीं खाते।"

सोमसुन्दर ने संन्यासी का चेहरा परखकर देखा। उस चेहरे पर तेज दमक रहा था। सोमसुन्दर तत्काल संन्यासी को घर के अन्दर ले गया। और उस ने उसे अच्छा-खासा भोजन खिलाया।

भोजन के बाद संन्यासी ने सोमसुन्दर से कहा, "बेटा, तुम्हारे आतिथ्य से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मन में ऐसी कोई इच्छा रही हो तो बताओ जो अधूरी रह गयी हो। तुम्हारी अधूरी इच्छा को पूरा करने की क्षमता मैं रखता हूँ।"

सोमसुन्दर कुछ कहने को हुआ, इतने में उसको रोककर संन्यासी फिर बोला, "इस में कोई जल्दी नहीं, तुम आराम से सोचकर अपनी इच्छा बताओ। अधूरी इच्छा का तात्पर्य है- वह इच्छा जो तुम्हारे प्रयत्नों के बावजूद भी संभव नहीं हुई हो।"

सोमसुन्दर पलभर सोचकर बोला, "स्वामिन्, मैं अनेक वर्षों से व्यापार कर रहा हूँ। पर इस में कोई उन्नति नहीं हो रही है। एक प्रकार से दरिद्र की पीड़ा मुझे सता रही है। इस व्यथा से मुझे मुक्त कर दीजिए। यही मेरी अधूरी इच्छा है। वैसे

श्रीराम शर्मा

मैं कोशिश तो हर प्रकार से करता हूँ। पर कभी कहीं नुकसान होता है, तो कभी कहीं। मैंने कई प्रकार के उद्योग किये, मगर पर्याप्त लाभ कहीं नहीं हुआ। इतना भी लाभ नहीं होता कि अपनी सारी आवश्यकताओं को आसानी से पूरा कर सकूँ।"

"अच्छी बात है। आज से ही तुम्हारी दरिद्र की पीड़ा दूर हुई समझो। इसी को मैं तुम्हारी अधूरी इच्छा मानकर चला जा रहा हूँ। दस वर्ष बाद मैं फिर इस ओर आऊँगा।" यह कहकर संन्यासी चला गया।

उस दिन से सोमसुन्दर का व्यापार दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता गया। क्रमशः वह जो भी संकल्प करता, पूरा होता रहा। आज तक के अनुभव से बिलकुल विपरीत अनुभव उसे होने लगा। जो काम हाथ में आता, उसे सफलता के साथ कर लेता। हर व्यापार में लाभ भी खूब मिलता रहा। उसके लड़के भी उसकी अच्छी मदद करने लगे।

दस वर्ष बीत गये। संन्यासी फिर सोमसुन्दर को देखने आ पहुँचा। सोमसुन्दर ने उसका भारी स्वागत-सत्कार किया और उसे मिष्टान्न भोजन कराया।

भोजन के बाद संन्यासी ने सोमसुन्दर से कहा, "बेटा, दस वर्ष पूर्व मैं तुम्हारे घर आया था। इस समय भी यदि युम्हारी कोई अधूरी इच्छा हो, तो बताओ। मगर एक बात याद रखो—एक व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति एक ही बार करने की शक्ति मैं रखता हूँ। इसलिए, अगर इस समय मैं तुम्हारी और एक कामना की पूर्ति करूँ, तो इसके पूर्व मैंने

तुम्हारी जिस कामना की पूर्ति की है, उसका फल व्यर्थ हो जाएगा । तुम अच्छी तरह सोच-समझ लो ।''

''स्वामी, भारी संपत्ति के होने से क्या फायदा जब कि कोई सन्तान न हो ! इसलिए मैं धन को त्याग देने के लिए तैयार हूँ । मुझे संतान प्रदान कीजिए ।'' सोमसुन्दर ने कहा ।

संन्यासी इसपर मन्दहास कर के बोला, ''बेटा, तुम बहुत समय से व्यापार कर रहे हो, इसलिए उसकी खूबियाँ अच्छी तरह जानते हो । इसी कारण से धन-संपादन के लिए तुम्हें अब किसी और व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं रही शायद ! अब तुम किसी अनाथ बालक को लाकर उसका लालन-पालन करोगे, तो तुम्हारी सन्तानहीनता की व्यथा जाती रहेगी । इसलिए मुझे लगता है कि इन दोनों कामनाओं की पूर्ति तुम स्वयं कर सकते हो । यह बात अच्छी तरह से याद रखो ।''

थोड़ी देर मौन रहकर सोमसुन्दर फिर बोला, ''स्वामीजी, मुझपर कृपा करके आप ही कहिए न, कि मुझे किस प्रकार की कामना करनी चाहिए ।''

''जिस प्रकार की इच्छा से तुम्हारा जीवन संतुष्टिपूर्वक चलता रहे, उसी प्रकार की कामना करो ।'' संन्यासी ने सलाह दी ।

यह उत्तर सुनने पर सोमसुन्दर अपने असंतोष का कारण समझ पाया । यदि उस की एक इच्छा की पूर्ति हो जाती है, तो मन में दूसरी कामना घर कर लेती है । इस कारण जीवन के प्रति असंतोष पैदा हो जाता है ।

सोमसुन्दर अत्यंत विनयपूर्वक बोला, ''स्वामी, अब मेरी आँखें खुल गयी हैं । मुझे केवल अपने जीवन में संतुष्टि प्रदान कीजिए । यही मेरे लिए पर्याप्त है । ऐसी स्थिति में मन में किसी प्रकार की कामना ही नहीं रह जाएगी ।''

सोमसुन्दर का विचार सुनकर संन्यासी ने संतुष्टिपूर्वक सिर हिलाया और कहा, ''इस क्षण से तुम्हारे जीवन में असंतोष कभी नहीं रहेगा । जो तुम्हें प्राप्त है, उसी से तुम संतुष्ट रहोगे ।'' यह कहकर संन्यासी वहाँ से चल पड़ा ।

सोमसुन्दर परमानन्दित हुआ और संन्यासी के ओझल होने तक संतुष्टिपूर्वक खड़े खड़े देखता ही रहा ।
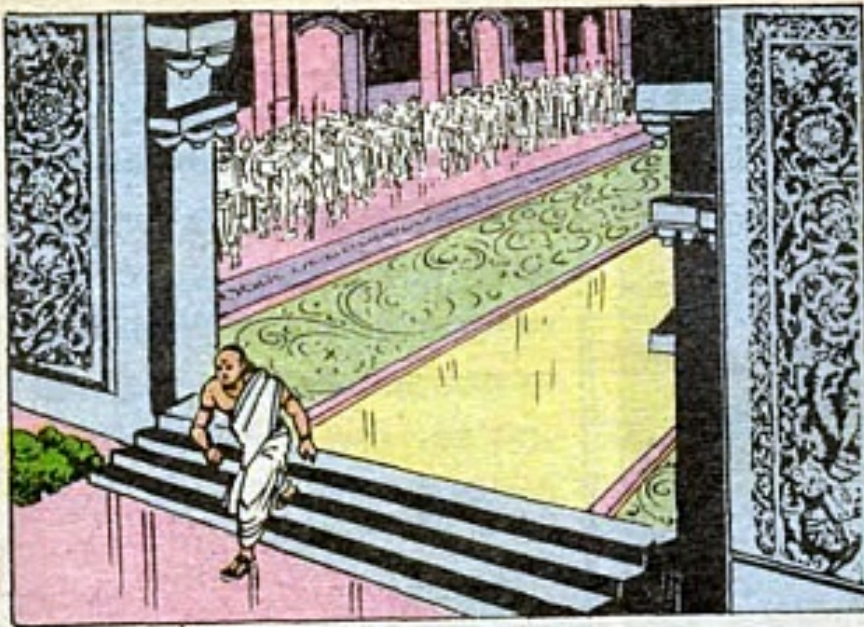
काव्य कथाएँ

राक्षसमुद्रिका—४

चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने नन्दों के मन्त्रि राक्षस को चन्द्रगुप्त के पक्ष में लाने के लिये ने एक योजना बनायी। चन्द्रगुप्त के साथ मतभेद का स्वांग रचकर वह चन्द्रगुप्त के दरबार को छोड़कर चला गया।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त के प्रकट रूप में हुए वादविवाद का समाचार मलयकेतु को मिला। मलयकेतु तथा राक्षस ने मिलकर सोचा, कि पाटलीपुत्र पर आक्रमण करने का यही एक अच्छा अवसर है। भविष्य में ऐसा मौका हाथ नहीं लगेगा। यह विचार पक्का होते ही वे युद्ध की तैयारियों में जुट गये।

उसी समय चाणक्य ने एक ऐसी जाली चिट्ठी लिखवाई—जिसे राक्षस ने चन्द्रगुप्त के नाम लिखी हो। उस चिट्ठी में उसने अपना ऐसा आशय प्रकट किया कि मलयकेतु का संहार करने के लिये सही समय निकट आ गया है।

मन्त्री राक्षस के द्वारा काम में लायी जानेवाली नन्द राजाओं की राजमुद्रिका चाणक्य ने किसी प्रकार हासिल की थी। उसने जो जाली चिट्ठी लिखवायी थी, उसपर वह राजमुद्रिका अंकित कर दी थी और उसे अपने एक गुप्तचर के द्वारा मलयकेतु के राज्य में भेज दी।

उस गुप्तचर ने पाटलीपुत्र के समीप डेरा डाले हुए मलयकेतु के सैनिकों के हाथों में पड़ने से बचने का प्रयत्न करने जैसा अभिनय किया। और वह जान-बूझकर उन के हाथों में बन्दी बन गया।

यह समाचार मलयकेतु को मिला। गुप्तचर के हाथ की चिट्ठी पढनेपर मलयकेतु को लगा कि राक्षस एक द्रोही, तथा दगाबाज आदमी है। इसके अलावा गुप्तचर ने यह भी सूचित किया कि मलयकेतु के समर्थक कुछ राजा असल में राक्षस के षड्यंत्र में शामिल हैं।

सर्वप्रथम मलयकेतु ने राक्षस से कैफियत माँगी, पर उसने कहा कि वह उस चिट्ठी के बाबत कुछ नहीं जानता। फिर भी उस चिट्ठी पर राक्षस की मुद्रिका अंकित थी, इसलिये मलयकेतु ने राक्षस के समर्थन का विश्वास नहीं किया। इससे विरक्त हो राक्षस वहाँ से चला गया।

इसके बाद मलयकेतु ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल हुए अपने आप्त-मित्रों की अत्यंत आवेश में आकर दारुण हत्या की। इसे देख अन्य लोग घबरा गये और उन्होंने मलयकेतु पर हमला कर के उस को बन्दी बनाया।

उधर विरक्त हुआ राक्षस पाटलीपुत्र की ओर चलने लगा। पाटलीपुत्र में ज्यों ही उसने प्रवेश किया तो उसने वहाँ सर्वप्रथम यही दृश्य देखा कि उसके परिवार को आश्रय देनेवाले चन्दनदास को राजभट बन्दी बनाकर नगर से दूर ले जा रहे हैं।

राक्षस ने उस दिशा में बढ़कर राजभटों से पूछा, "तुम लोग चन्दनदास को क्यों बन्दी बनाकर ले जा रहे हो ?" भटों ने उत्तर दिया, "इस आदमी ने हमारे राजा के शत्रु राक्षस के परिवार को आश्रय दिया है। इस राजद्रोह के अपराध में इस को मृत्युदण्ड सुनाया गया है। उसका अमल करने के लिये हम इसे वधभूमि में ले जा रहे हैं।"

"मैं ही राक्षस हूँ। मेरे परिवार के आश्रयदाता इस दयालु व्यक्ति को मुक्त कर आप लोग मेरा ही वध कीजिये।" राक्षस ने कहा। उसी समय चाणक्य राक्षस के परिवारसहित वहाँ आ पहुँचा और बोला--"राक्षस, यदि तुम यह वचन दोगे, कि तुम चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनने के लिये तैयार हो, तो हम तुम्हारे इस मित्र को प्राणों के साथ मुक्त कर देंगे।"

बाद में चाणक्य ने राक्षस को यह भी बताया कि "मैं ने तुम को चन्द्रगुप्त के पक्ष में करने के लिये ही तुम्हारे हाथों लिखी जैसी जाली चिट्ठी भेज दी थी और चन्दनदास को मृत्युदण्ड सुनाने का स्वांग रचा।" राक्षस ने इसपर चन्द्रगुप्त के मन्त्रीपद का स्वीकार किया। इस प्रकार चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने मगध राज्य के साथसाथ मन्त्री राक्षस को भी अपने वश में कर लिया।

विद्या की महिमा

देवगिरि में सोमदेव नाम का एक आदमी रहता था। उसके दो बेटे थे। बड़ा बेटा घर में रहकर खेतीबाड़ी का काम संभालता था। दूसरा बेटा जयदेव विद्याप्रेमी था। ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से घरबार छोड़कर वह गुरु की खोज में निकल पड़ा।

जयदेव यात्रा करते करते थक गया। कई दिन खाना नहीं मिला, न अच्छी नींद ! एक समय किसी गाँव में एक घर के सामने बेहोश हो गिर पड़ा। पहले तो किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। कुछ लोग थोड़ा-सा देखकर आगे बढ़े। थोड़ी देर में वहाँ एक भीड़-सी लगी। कोलाहल सुनकर सामनेवाले घर के मालिक ने किवाड़ खोलकर झाँककर देखा। उस मालिक का नाम था हरिशर्मा।

हरिशर्मा जयदेव को अपने घर में ले गया। उसे पीने को पानी दिया। नहला-धुलाकर उसको खाना खिलाया। उसके बाद उसका सारा हाल जान लिया। जयदेव विद्या प्राप्त करनेके लिये घर छोड़कर चला और गुरु की खोज में भटक रहा है यह जानकर हरिशर्मा को बड़ी प्रसन्नता हुई। हरिशर्मा स्वयं एक प्रकांड पंडित था। वह गुरुकुल नहीं चलाता था। पर सुयोग्य विद्यार्थी मिला तो उसे पढ़ाने में उसे आनन्द आता। जयदेव का विद्या का प्रेम देख उसे आश्चर्य हुआ। इस लिये जयदेव को तीन साल अपने घर में रखनेका उसने निश्चय किया। उसके भोजन व निवास की व्यवस्था की और उसकी शिक्षा का प्रारंभ किया। जयदेव के पास सूक्ष्म बुद्धि थी, इस लिये तीन वर्षों के काल में उस ने हरिशर्मा से संपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। हरिशर्मा को जयदेव के प्रति विशेष स्नेह हुआ। वह अभिमान से कहता था—"जयदेव मेरा सर्वोत्तम शिष्य है। कम से कम समय में मेरा संपूर्ण ज्ञान ग्रहण करनेवाला

(२५ वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी)

शिष्य जयदेव ही है। अब उसको किसी और गुरु से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।"

अब हरिशर्मा ने जयदेव को समझाकर कहा— "देखो बेटा, किसी और गुरु के पास जाकर तुम और विद्याएँ सीखोगे तभी तुम्हारी शिक्षा पूर्ण हो जाएगी। मैं तुम को एक और गुरु के पास भेजूँगा। वह है एक भील-वंशी राजा। वह तुम्हें चौर्य-कर्म, आखेट आदि कलाएँ सिखाएगा। उसके पास पहुँचने का मार्ग मैं तुम्हें बताता हूँ। अगर तुम जीवन में सफल बनना चाहते हो तो सब प्रकार की विद्याएँ और कलाएँ तुमको सीखनी चाहिए। मनुष्य को जीवन में व्यवहारकुशल होना आवश्यक है। अतः मैं तुम्हें जिस गुरु के पास भेज रहा हूँ, वहाँ अच्छी तरह विद्याभ्यास करना।"

हरिशर्मा के मार्गदर्शन के अनुसार जयदेव भील राजा के पास पहुँचा। भील राजा ने हरिशर्मा के इस शिष्य को एक साल भर अपने पास रखा और उसे चोरी करना, चोरों को पकड़ना, जानवरों का पता लगाना, शिकार खेलना आदि सारी विद्याएँ सिखाईं।

इस प्रकार सारी विद्याएँ सीखनेके बाद जयदेव अपने गाँव के लिए निकल पड़ा। एक दिन वह किसी गाँव में से गुज़र रहा था, उसे बड़ी प्यास लगी। एक ब्राह्मण के घर में उसने पीने का पानी माँगा। ब्राह्मण ने उसे घर में बुलाया, उसका आतिथ्य किया और उसकी सारी कहानी सुन ली फिर पूछा —"बेटा, तुम्हारी समस्त विद्याओं की परीक्षा करनेके लिए क्या मैं तुम से एक सवाल पूछ सकता हूँ?"

"क्यों नहीं? अवश्य पूछिएगा। मैंने भील राजा के पास कई उपयुक्त विद्याओं का अध्ययन किया है। आपका प्रश्न चाहे जैसा हो, मैं यथासंभव उसका उत्तर देने की कोशिश करूँगा।" जयदेव ने नम्रता से कहा।

"तुम बता सकोगे कि तुम्हारे आनेसे पहले इस घर में कौन आये थे? इस मकान के आगे से कौन कौन निकले?" ब्राह्मण ने सवाल किया।

जयदेव थोड़ी देर के लिए घर के बाहर गया। फिर लौटकर बोला—"मेरे घर में आनेसे पहले यहाँ चार आदमी आये हैं। वे राजभट या सैनिक होंगे। वे आप के घर के आगे से गुज़र गये। उन

से पहले एक आदमी आपके घर के सामने से चला गया है। उसके सिर पर कोयले की एक गठरी थी। संभवतः उसने चोरी की होगी।"

ब्राह्मण को यह सब सुनकर आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"यह बात सच है कि हमारे घर चार राजभट आये थे। असल बात यह है कि रानी का एक हीरा मंदिर के पास गिर गया। उसकी खोज करनेसे पहले किसी ने उसे हड़प लिया। इस लिए राजभट सब लोगों के घर जाकर तलाशी ले रहे हैं। हमारे घर की तलाशी के लिए भी वे आये थे, पर उनको हीरा न मिला। तुम कहते हो कि एक चोर हमारे मकान के सामने से होकर गुज़रा है। अगर तुम खोये गये हीरे का पता लगाकर चोर को पकड़ाओगे तो राजा तुम्हें बढ़िया पुरस्कार देंगे।"

जयदेव ने ब्राह्मण से कहा कि मैं थोड़ी देर बाहर जाकर फिर लौटता हूँ। वह घर से निकल पड़ा। रास्ते पर चारों तरफ़ देखते हुए वह एक मकान के सामने पहुँचकर ठहर गया। वह मकान एक स्वर्णकार का था। जयदेव ने भीतर प्रवेश करके सुनार से सोने का भाव पूछा। नगीने गढ़ने की मज़दूरी के बारे में पूछा। और यह ब्राह्मण के घर लौट आया। उसने ब्राह्मण से कहा—"महाशय, मैं चोर को पकड़ा सकता हूँ। आप राजभटों को बुलवा लेंगे?" ब्राह्मण ने राजभटों के पास संदेश भेजा और जयदेव के पूछा—"बेटा, तुम ने चोरी का पता कैसे लगाया भला? राजभट इतनी देर तक घर-घर की तलाशी ले रहे हैं।
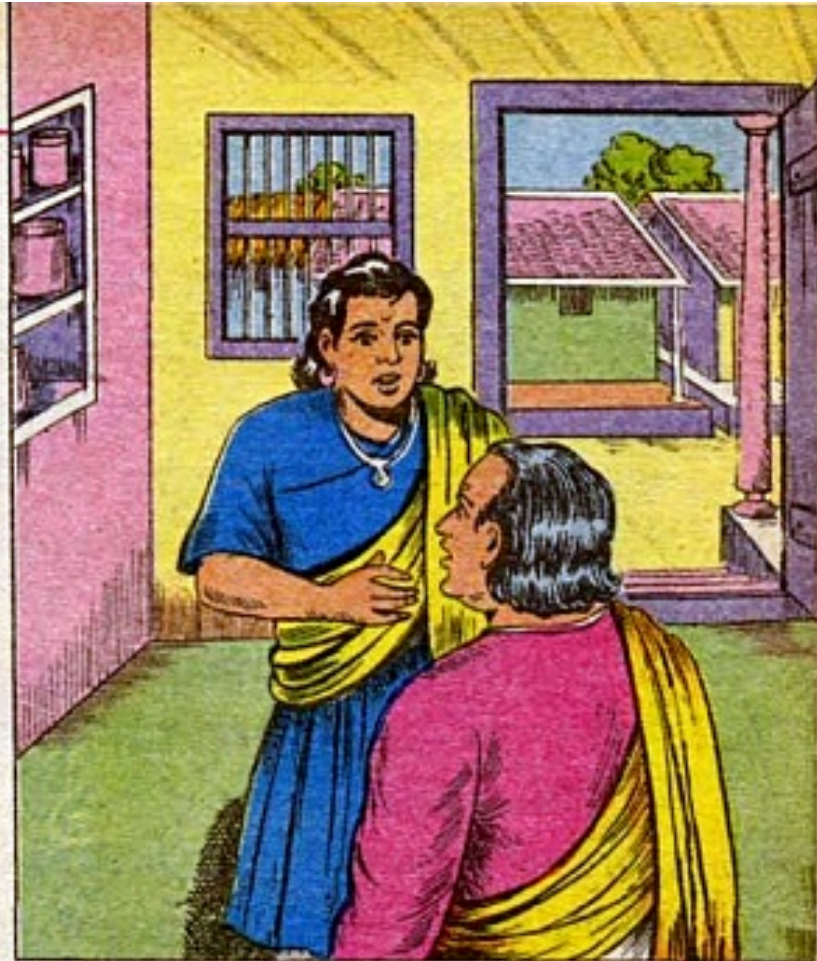
उनको चोर का पता नहीं चला। तुमको कैसे इतनी जल्दी चोर मालूम हुआ?"

"युद्ध विद्या में प्रशिक्षित राजभट जब रास्ते पर चलते हैं, तब उनके कदम एक साथ पड़ते हैं। वे लोग कतार में चलते हैं। उन के पैर एक ही परिमाण में पड़ते हैं। इस लिए उनके पद-चिन्हों के आधार पर मैं ने जान लिया कि जो चार व्यक्ति आप के घर आये थे वे सैनिक या राजभट ही हो सकते हैं।" जयदेव ने समझाते हुए कहा।

"मगर तुम ने यह नहीं बताया कि तुम ने चोर का पता कैसे लगाया।" ब्राह्मण ने फिर प्रश्न किया।

ज़रा रुक कर जयदेव ने समझाना शुरू

किया—"चोर सड़क पर बीच में नहीं चलता। वह किनारे किनारे चलता है। इस चोर के सिर पर कोयले की गठरी थी। जब वह रास्ते के किनारे चल रहा था, तब कोयले का चूरा इधर-उधर गिरता रहा। कोयले का बोरा उठाकर वह सीधे नहीं चला, बीच बीच में मुड़कर देखता गया। उसके पद-चिन्हों से यह बात साफ़ नज़र आती है। शायद इस विचार से उसने मुड़-मुड़ कर देखा हो कि कहीं कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहे हैं। इस लिए मैं ने अनुमान लगाया कि उसने ज़रूर चोरी की होगी। मैंने यह भी देखा कि राजभटों के पद-चिन्हों की अपेक्षा चोर के पद-चिन्ह थोड़ा छितर गये हैं। इस लिए मैं ने जान लिया कि चोर के गए एक-दो घडी समय बीत गया है। मैं ने यह भी अनुमान लगाया कि संभवतः राजभट इसी चोर की खोज कर रहे होंगे

वे दोनों इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, कि इतने में राजभट आन पहुँचे। जयदेव उनको स्वर्णकार के घर ले गया। राजभटों ने इसके पहले इस मकान की तलाशी ली थी। उन्होंने सभी सन्दूक, अलमारियाँ आदि की जाँच की थी। पर चोर किसी चोरी की चीज़ को छेद या सुरंग में छिपा देते हैं यह रहस्य जयदेव जानता था। इसी ज्ञान के आधार पर उसने रानी के खोये हुए हीरे को एक छेद में से बाहर निकाला। सुनार ने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। उसने बताया कि रानी का हीरा नीचे गिरते हुए उसने देखा और उसे उठा लिया। किसी के मन में संदेह न पैदा हो इस विचार से उसने एक कोयले की गठरी खरीद ली और ऐसे घर लौटा जैसे काम से अपने गाँव लौट जा रहा है।

रानी का हीरा पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने जयदेव को बढ़िया पुरस्कार दिया। ब्राह्मण के मुँह से चोर को पकड़ने का सारा वृत्त सुनकर राजा को बहुत संतोष हुआ। समस्त विद्याओं में प्रवीण जयदेव को राजा ने और उपहार दिये और उसको अपनी सेवा में रख लिया।

राजा के दरबार में जयदेव ने दिन-दूनी रात चौगुनि प्रगति की। वह राजा का विशेष प्रेम-पात्र बन कर रहा।

कंस की मृत्यु का समाचार पाकर उसकी सभी पत्नियाँ वहाँ पर मूर्तिभूत शोकदेवियों जैसी आ पहुँचीं और अपने पति के शवपर गिरकर दहाडे मार कर, छातियाँ पीटती हुई विलाप करने लगीं । उनका विश्वास था कि, तीनों लोगों में कंस का संहार कर सकनेवाला व्यक्ति है ही नहीं । वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकीं कि, ऐसा शक्तिशाली पुरुष एक निरे बालक के हाथों इस प्रकार बुरी मौत मर सकेगा और इतने शीघ्र उन्हें वैधव्य प्राप्त होगा । बालक श्रीकृष्ण के बल-पराक्रम की उन्हें कल्पना न थी । जो कुछ हुआ, वह उनके लिए एकदम अनपेक्षित था । कंस की मृत्यु पर सभी पत्नियों को अपार दुख हुआ ।

कंस की माता भी अपनी बहुओं के साथ अपने पुत्र की मृत्यु पर रो पड़ी । अपने पति उग्रसेन के पास पहुँच कर उसे उलाहना देते हुए वह बोल उठी, "वज्रपात के कारण गिरे हुए पर्वत की भाँति, गिरे हुए अपने पुत्र को देखा तुमने? उसकी अंत्येष्टि-क्रिया करनी है न तुम्हें ? कृष्ण ने अपने बाहुबल से हमारा राज्य जीत लिया है । अब उससे अनुमति माँग लो, ताकि कंस की अंत्येष्टि-क्रियाएं संपन्न की जा सकें ।"

इसी वक्त सूर्य इस प्रकार अस्त हो गया, कि मानो, वह कंस की मृत्यु की प्रतीक्षा में ही अभी तक डूबा नहीं था । उस संध्या के समय यादवों के बीच रहे कृष्ण को जब कंस की पत्नियों का रुदन-स्वर सुनाई दिया, तब उसकी आँखों में
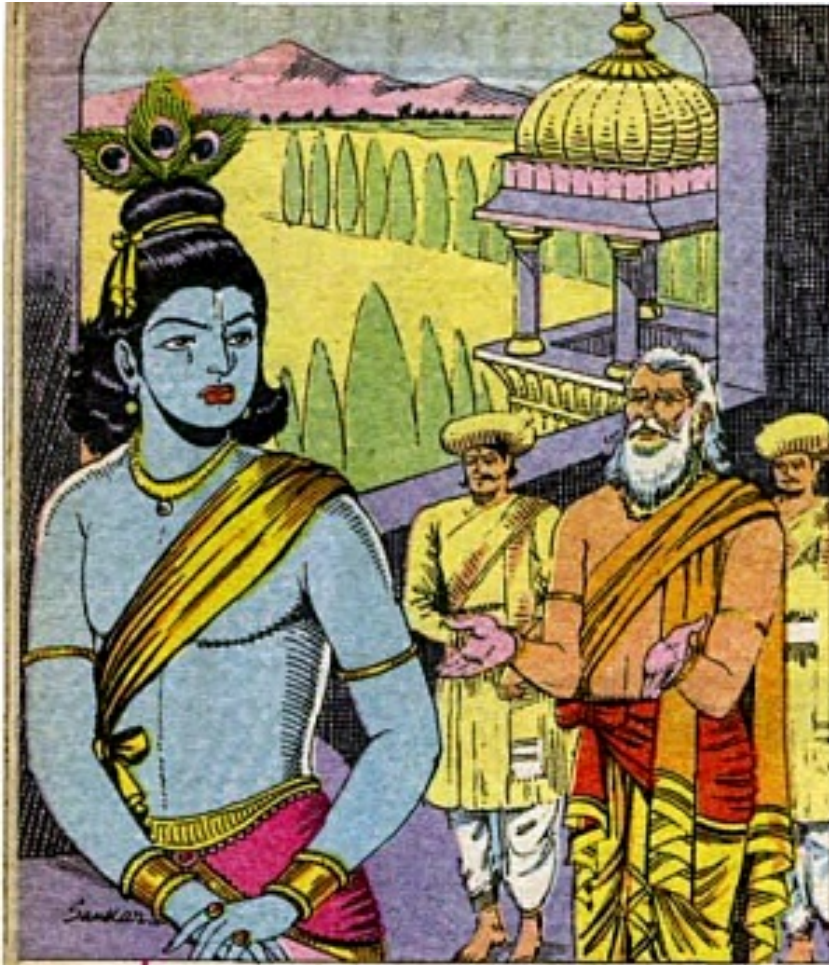
आँसू छलक आये। वह अपने चारों ओर फैले हुए बन्धुजनों से कहने लगा, "मैंने अत्यन्त बाल्य-सुलभ भावना के वशीभूत होकर कितनी स्त्रियों को वैधव्य दुख पहुँचा दिया है। पर सचाई यह है, कि कंस की दुष्टता का निर्मूलन करने का कोई और उपाय भी तो नहीं था। उस दुष्ट जैसा, अपने ही पिता को बन्दी बनाकर राज्यशासन करनेवाला पुत्र कहीं और कोई है? जनश्रुति है कि, पापी पर दया दिखाना भी पाप है। जगत् के कल्याण के हेतु ही मैं ने इस दुष्ट का निर्दालन किया है। कंस की निर्दयता और कठोरता तो सब ने देखी है। उसने मेरे पिता-माता के प्रति जो अन्याय किया उसके बारे में उनके प्रति मेरे मन में शत्रुता नहीं है। पर दुष्टता की भी हद होती है। कोई जनम भर पाप ही पाप करता रहे, और कोई उसका बन्दोबस्त न कर सके, यह कैसे हो सकता है। ऐसा ही कुछ विचार मन में रखकर मैं ने करणीय किया। भविष्य के कार्यक्रम के बारे में भी मैं ने पहले ही सोच रखा है।"

उसी समय उग्रसेन, शिवि आदि वृद्ध यादवों के साथ वहाँ आ पहुँचा। थोड़ी देर कृष्ण के सामने सिर झुकाकर खड़ा रहा, उसने आँसू बहाये और फिर सिर उठाकर गद्‌गद् स्वर में बोला, "बेटे, तुमने अत्यंत क्रूर एवम् भयंकर शत्रु का संहार कर अपूर्व यश प्राप्त कर लिया है। यादव वंश को तुमने अत्यंत आनन्द पहुँचाया है। अब यह राज्य तुम्हारा है, तुम्हीं यहाँ के राजा हो। अब तुम इस राज्य का इस तरह वैभव भोगो कि जिससे जनता के लिए भी किसी प्रकार का कष्ट वा अभाव न हो। तुम्हारे शत्रु का अन्त हो गया है, इसलिए अब तुम प्रतिशोध की भावना न रखो। मुझ जैसे लोगों के प्रति स्नेह और प्यार का भाव रखो। अब कंस का दाह संस्कार करना है। तुम इसके लिए अनुमति दो, तो मैं मेरी पत्नी और मेरी बहुएँ—अब मिलाकर तर्पण देंगे। इस के बाद मैं जटा एवम् वल्कल धारण कर वनवास करूँगा।" तुम ने कंस का वध किया इस बात का खेद भी करें तो कैसे ? जिसने अपने जीवन भर अन्याय ही अन्याय किया, उसे दंड देनेवाला भी कोई निकलनेवाला था। तुमने जो कुछ किया उसके लिए तुम्हारी भूरी भूरी प्रशंसा करनी चाहिए। दुष्टों का निर्दालन करने का कार्य

निरंतर करते रहो। अन्याय पीड़ित जनों की पीड़ा कौन दूर करेगा ?

इसपर कृष्ण ने कहा, "इस कार्य के लिए मेरी अनुमति की आवश्यकता किस लिए? कंस की क्रियाओं को संपन्न करने में मैं क्या आपत्ति उठा सकता हूँ ? मैं यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देता हूँ—मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है। राज्य व संपत्ति के लालच में आकर मैं ने कंस-वध नहीं किया है। कंस वंशद्रोही, तथा जगत् के लिए काँटा बन बैठे थे; इसलिए लोकहित की कामना से ही मैं ने उनका संहार किया है। इससे मुझे जो यश प्राप्त हुआ है, वही मुझे पर्याप्त है। अब मैं गायों के रेवडों के बीच पहुँचकर गोपालों के साथ मिलकर खेलकूद और नाच-गान में लग जाऊँगा। मैं ये बातें केवल आप को खुश करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। वास्तव में यह राज्य आप ही का है। इसे आप के पुत्र ने हर लिया था; अब फिर वह आप का हो गया। आप सुख-पूर्वक राज्यपालन कीजिए। यह राज्य जीत कर मैं स्वयं आप को दे रहा हूँ। आप अपना राज्याभिषेक करवा लीजिए। आप के मन में मेरे प्रति अगर कुछ वात्सल्य और प्रेम हो, तो आप मेरी यह इच्छा नहीं टालिए।"

इतना कहकर ही कृष्ण संतुष्ट नहीं हुआ। उसने तत्काल सब लोगों के बीच उग्रसेन का राज्याभिषेक करवाया। उग्रसेन ने कृष्ण-बलराम का उचित रूप में सत्कार किया। कृष्ण ने विशेष रुचि लेकर मथुरा नगरी को पहले की अपेक्षा कहीं और सुन्दर व वैभव-शाली बनाया। उग्रसेन के महल तक जानेवाले राज-मार्ग को और प्रशस्त बना दिया। जनता को किसी प्रकार की तकलीफ न हो इस लिए तरह तरह की नई सुविधाओं का निर्माण किया। आइंदा कंस के समान कोई कठोरता बरते, तो उसके दमन का उचित प्रबंध किया।

एक दिन कृष्ण ने बलराम से कहा, "भैया, हम बचपन से ही शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार एवम् दुनियादारी का ज्ञान प्राप्त किये बिना वनों में चक्कर लगाते रहे। अब इस समय ही सही, मगर हमें किसी गुरु के आश्रय में जाकर शिक्षा प्राप्त करना उचित होगा।"

इस विचार के पैदा होने ही बलराम और कृष्ण
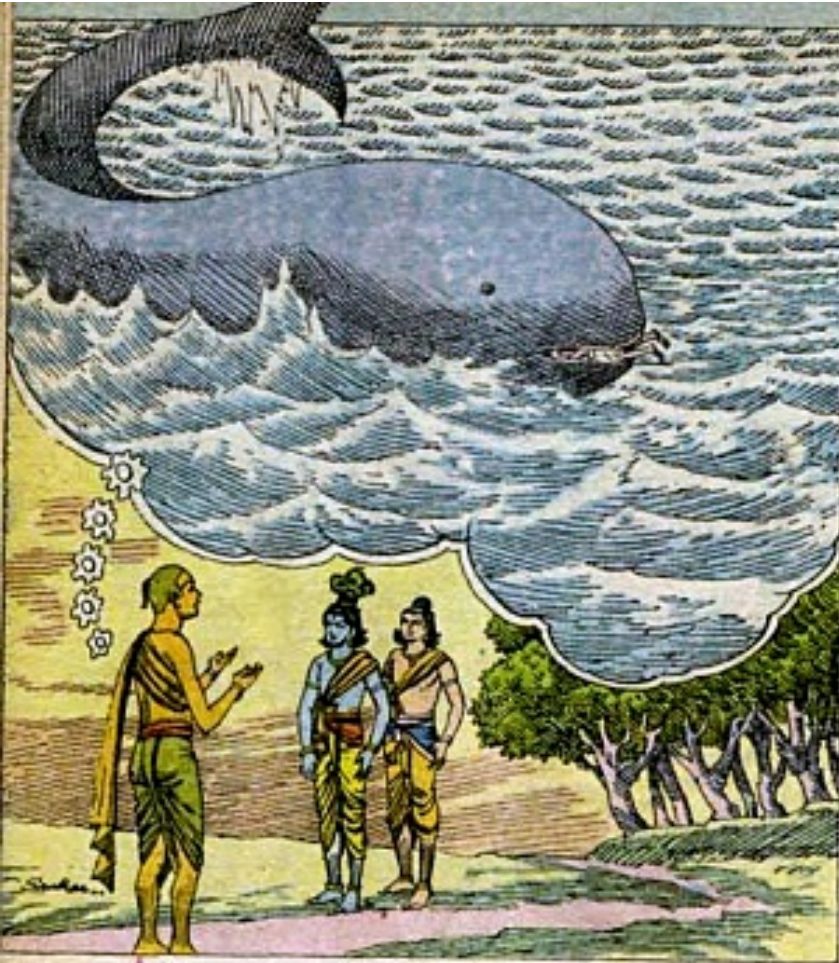
ने अपना संकल्प अपने आत्मीय जनों को सुनाया और अनुमति लेकर वे अवंतिपुर के निवासी सांदीप नामक ब्राह्मण के पास पहुँचे। अपना नाम, पता व गोत्र आदि का परिचय देकर उन दोनों ने उन से शिक्षा प्रदान करने की अभ्यर्थना की। उसने दोनों भाइयों को अपना शिष्य बनाया और चौंसठ दिनों में उनसे चारों वेद और षडांगों का अध्ययन कराया। इसके बाद बारह दिनों में दोनों भाइयों ने धर्मशास्त्र तर्क, न्यायशास्त्र, गणीत, संगीत और सैनिक विद्याएँ सीख लीं। इसके उपरान्त पचास दिनों में उन्हों ने अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास पूर्ण रूप से किया। उनकी अध्ययन शक्ति पर विस्मित हो, सांदीप ने कहा, "कहीं मानव रूप धरकर आये हुए ये दोनों सूर्य और चंद्र तो नहीं!"

बलराम और कृष्ण ने गुरु के पास विद्याभ्यास पूर्ण करने पर उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा, "आप की कृपा से हम शिक्षित हो गये। आपने पिता के समान हमसे प्रेम किया। अलग अलग विद्याएँ और कलाएँ हम को पूर्णतः सिखा दी। अब कृपया बताइये, आप हम से गुरुदक्षिणा में क्या चाहेंगे? आप की इच्छा चाहे जितनी भी दुर्घट हो, हम उसकी पूर्ति ज़रूर करेंगे।"

सांदीप ने इस पर कहा, "मेरे एक पुत्र था। वह तीर्थाटन पर निकल पड़ा था एक बार। इसी दौरान वह एक स्थान पर समुद्र में स्नान कर रहा था। तब उसको एक तिमिंगल (व्हेल) ने निगल डाला। वह पुत्रशोक आज भी मेरे हृदय को जला रहा है। कृपा करके मुझे मेरा पुत्र किसी प्रकार वापस दिला दो। बस, यही मेरी प्रार्थना है।"

अपने गुरु की गुरुदक्षिणा चुकाने का निश्चय कर, कृष्ण ने अपने बड़े भाई की अनुमति प्राप्त की और धनुष-बाण लेकर कृष्ण समुद्र के तटपर पहुँचा। समुद्र को उसने आदेश दिया, "हमने सुना है, कि हमारे गुरु सांदीप ने अपने पुत्र को आप के जल में खो दिया है। उसको निगलनेवाले दुष्ट को मुझे तत्काल दिखाये।"

दूसरे ही क्षण समुद्र प्रत्यक्ष हो, हाथ जोड़कर काँपते हुए बोला, "महानुभाव, पंचजन नाम के राक्षस ने तिमिंगल के रूप में प्रवेश करके आप के गुरुपुत्र को निगल डाला है। उस राक्षस को मैं
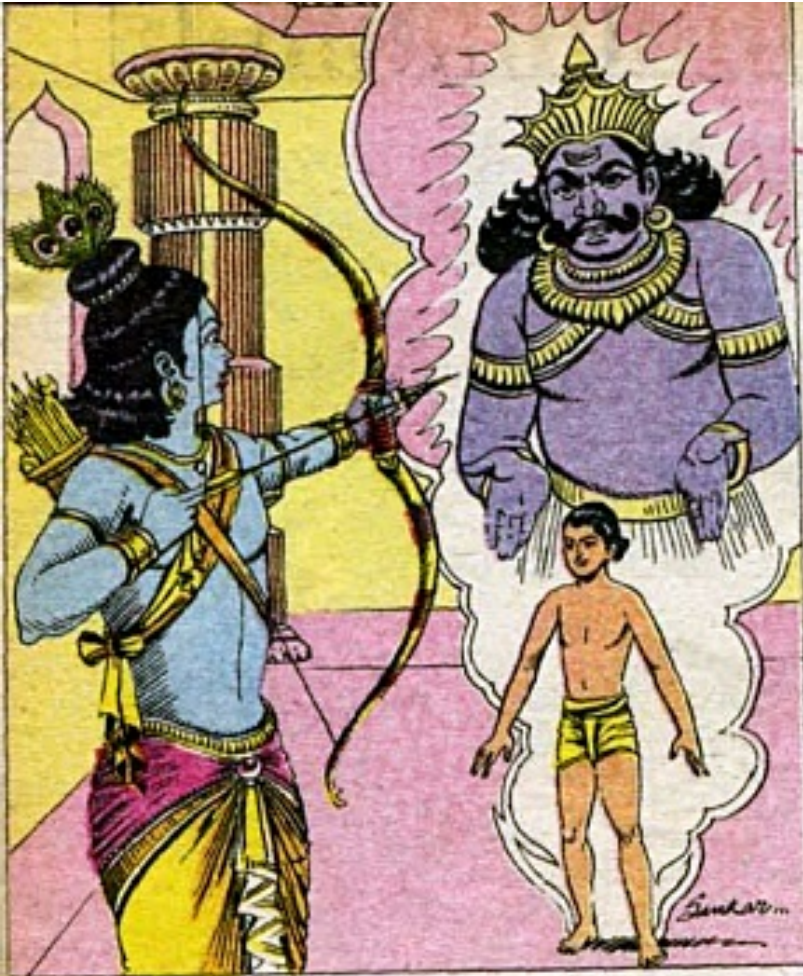
अभी आप के सम्मुख उपस्थित कर देता हूँ।"

फिर क्या था ! उसी क्षण समुद्र की लहरों ने तिमिंगल रूपधारी पंचजन को लाकर किनारे पर फेंक दिया । कृष्ण ने तलवार से उसका पेट चीरकर देखा; मगर उसके अन्दर गुरुपुत्र नहीं था, बल्कि एक विशाल शंख उस पेट में उसे मिला। उस शंख पर आकृष्ट हो कृष्ण ने उसे अपने उपयोगार्थ रख लिया। चूँकि वह शंख पंचजन के पेट से प्राप्त था, उसका नाम पांचजन्य हो गया।

मगर गुरुपुत्र की समस्या तो अभी बनी ही रही। उस युवक का आखिर क्या हुआ ? कहीं मरकर वह यमलोक तो नहीं गया? इस विचार से दक्षिणी दिशा में प्रयाण कर कृष्ण यमलोक पहुँचा। सिंहासन पर बैठे यमराज को ललकार कर उसने कहा, "हमारे गुरु सांदीप के पुत्र को तुम उठा लाये हो। उसको इसी क्षण मेरे हाथ सौंप दो। यदि तुम मेरे साथ संघर्ष करो, तो मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा।"

इस पर भयकंपित हो यमराज हाथ जोड़कर बोला, "महात्मा, मैं केवल प्राणियों के पाप-पुण्यों का निर्णायक हूँ। प्राणियों के प्राण हर लानेवाला मैं नहीं, बल्कि वह मृत्यु का काम है।"

"मृत्यु में ऐसा अहंकार ? हमारे गुरुपुत्र को उठा लाने के साथ हमें भी इतनी दूर भटका देने का साहस ! समझो, अभी उसी की आयु का अन्त हो गया।" यह कहकर कृष्ण ने धनुष्य पर बाण चढ़ा दिया। यह देख भयभीत मृत्यु गुरुपुत्र को फिर सजीव कर वहाँ ले आया और उसे कृष्ण के सामने प्रस्तुत किया।"

इस प्रकार कृष्ण ने समुद्र, यमराज तथा मृत्यु को भी थरथर कँपा दिया और पांचजन्य तथा गुरुपुत्र को भी प्राप्त कर वह गुरु के पास लौट आया। गुरु सांदीप आश्चर्य और प्रसन्नता से भर उठा। उसने अपने पुत्र का आलिंगन किया और इस अपूर्व गुरु-दक्षिणा चुकानेवाले अपने शिष्य कृष्ण को अनेक आशिर्वाद दिये।

इसके बाद बलराम और कृष्ण कुछ दिन अपने गुरुजी के घर रहे और बाद में उनसे बिदा लेकर मथुरा लौटे।

उग्रसेन ने कृष्ण-बलराम का अपूर्व स्वागत किया और उनका जुलूस निकला। अपने बन्धु व परिवार को साथ ले जाकर उनकी अगवानी की

और वाद्यवृन्द के साथ उन्हें नगर में ले आया। बादमें वे दोनों वसुदेव के घर पहुँचे। अपने विद्याभ्यास के अनुभवों के बारे में सब लोगों को विस्तार से बातें सुनायीं और वहीं पर सुखपूर्वक दिन बिताने लगे।

जरासंध मगध देश का राजा था। उस की आस्ति और प्रास्ति नाम की कन्याएँ कंस की पत्नियाँ थीं। जरासंध ने जब सुना कि उसके जामाता कंस का संहार करके कृष्ण ने उसकी पुत्रियों को विधवा बनाया है तब वह अत्यंत क्रोध में आ गया। कृष्ण से इस बात का प्रतिशोध लेने का संकल्प कर के जरासंध अनेक राजाओं को साथ लेकर और इक्कीस अक्षौहिणी की सेना समेत मथुरा पर आक्रमण करने निकल पड़ा। यमुना किनारे डेरा डालकर उसने विन्द और अनुविन्द नाम के अपने दो पुत्रों को दूत के रूप में कृष्ण के पास भेजा। उग्रसेन की सभा में उपस्थित होकर उसी सभा में बलराम के साथ बैठ कृष्ण को उन्होंने जरासंध का संदेश सुनाया।

"तुम और तुम्हारे भाई बलराम ने बड़े योद्धाओं की भाँति मथुरा में प्रवेश कर कंस और उसके छोटे भाई का वध किया है। कंस मेरा जामाता था। अपनी पुत्रियों के वैधव्य से दुखित होकर मैं तुमसे युद्ध करने आया हूँ। शीघ्र ही तैयार होकर तुम मेरे साथ युद्ध करने आ जाओ। मेरा अंतिम निश्चय है कि हम दोनों में या तो तुम जीवित रहो, या मैं रहूँ। मगर किसी भीहालत में हम दोनों को साथ साथ इस पृथ्वी पर स्थान नहीं है। सामने आकर तुम मुझ से युद्ध करो, तो मैं तुम को मार डालूँगा। मेरे हाथ से बचकर युद्धभूमि से भागकर तुम पाताललोक में भी घुस जाओगे, तो तुम्हारा पीछा वहाँ तक भी करके मैं तुम्हारा अन्त कर डालूँगा। मेरी शक्ति, पराक्रम और सामर्थ्य का परिचय तुम अक्रूर या तुम्हारे छोटे भाई सात्यकी के द्वारा प्राप्त कर सकते हो। मैं कल ही मथुरा नगरी को घेरा देनेवाला हूँ। तैयार रहो!"

जरासंध का यह संदेश दूतों द्वारा सुनकर कृष्ण मंदहास करके बोला, "यह सब सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मैं वाचाल नहीं हूँ। मैं स्वयं ही जरासंध का दमन करने जाना चाहता था, पर अच्छा ही हुआ, वह स्वयम् यहाँ तक आ

गया है। पूर्वकाल में राक्षसी ने उसके शरीर को जोड़ दिया था। मैं फिर उस शरीर के दो टुकड़े कर दूँगा। जिस प्रकार कंस का वध करके मैं ने उसका राज्य उग्रसेन के हाथ सौंप दिया है, उसी प्रकार जरासंध का भी वध करके मैं उस के पुत्र का मगध राज्य के लिए अभिषेक करूँगा।"

इसके बाद जरासंध के दूत बनकर आये राजकुमार कृष्ण के द्वारा सत्कार पाकर लौट गये और कृष्ण का संदेश उन्होंने जरासंध को सुनाया।

इधर जरासंध का नाम सुनकर ही उग्रसेन आदि यादव-प्रमुख भयभीत हो गये। उन में विकद्र नामक वृद्ध यदु कहने लगा।

"बेटा कृष्ण, जिस प्रकार कमल में से ब्रह्मा का उद्‌भव हुआ, उसी प्रकार तुमने यदुवंश में जन्म धारण कर लिया है। तुम्हारे रहते, यादवों को किसी से डरने की ज़रूरत नहीं है। मगर जरासंध को अनेकों राजाओं का साह्य प्राप्त है। वह न केवल युक्तिवान् है, बल्कि अत्यन्त क्रूर स्वभाव का भी है। उस को युद्ध में परास्त करने की शक्ति अकेले तुम ही रखते हो। कंस ने अहंकार वश अपने दुर्ग को असुरक्षित रख छोड़ा था। हमारे पास जो अस्त्र, शस्त्र व रसद तक नहीं है। वास्तव में यह दुर्ग की संज्ञा के लायक नहीं है। शत्रु ने अचानक हमला बोल दिया है। उसका सामना करने की क्षमता रखते हुए हम हाथ जोड़कर बैठे रहें तो इस राज्य से हम हाथ धो बैठेंगे। प्राचीन काल में मुचिकुन्द, पद्मवन्त, सारस, हरित नामक यादव राजाओं ने ऋक्षवन्त, विंध्य, सह्य नामक पर्वतों में और पश्चिमी समुद्र के द्वीपों में भी शत्रुओं से बचने के लिए दुर्भेद्य अनेक दुर्ग बनवाये हैं। इन चारों राजाओं के पहले, माधव नामक राजाने इस मथुरा का राज्य किया है। आज इस दुर्ग को सुदृढ बनाना संभव नहीं है। इसलिए हमें एक और दुर्ग का निर्माण करना होगा। मैं वास्तविक समाचार तुम्हें सुना रहा हूँ। अब अन्तिम निर्णय तुम्हारा है। तुम इस सम्बन्ध में अच्छी तरह सोचकर निर्णय लो।"
सम्बन्ध में अच्छी तरह सोचकर निर्णय लो।
सुचिन्तित निर्णय के आधार पर काम करना ही अब उचित होगा।"
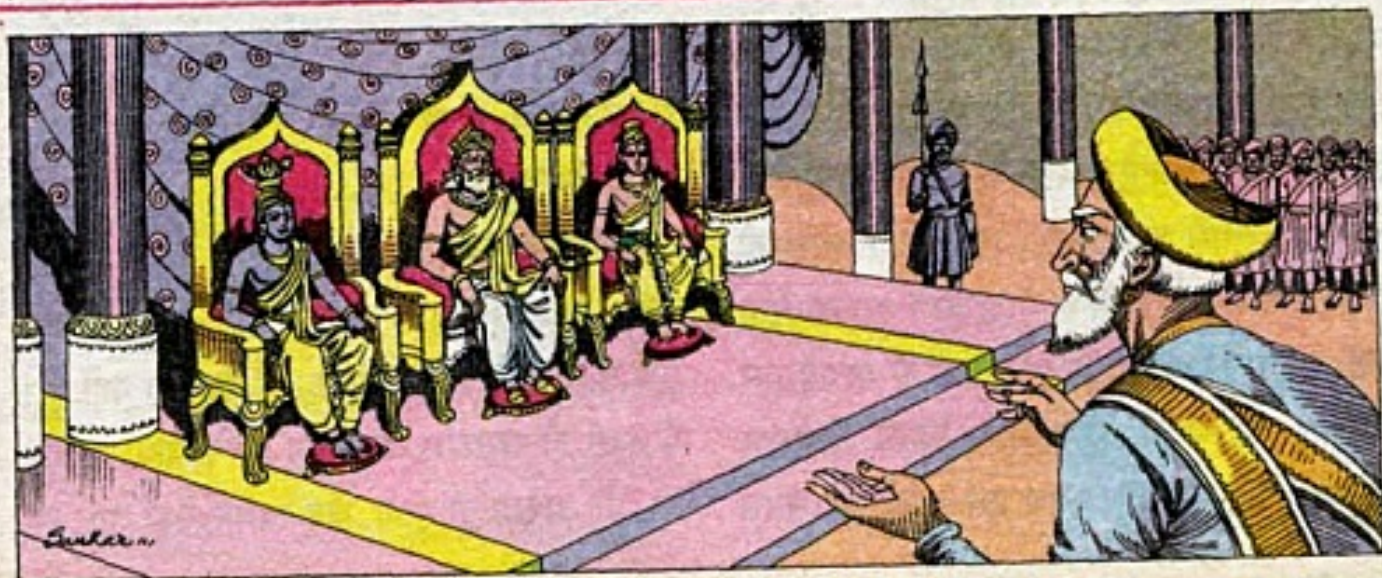
किसी गाँव में विरुपाक्ष नाम का एक अमीर व्यक्ति रहता था । ललित कलाओं में उसको कुछ रुचि थी,वह गीत-रचना में कुशल था, साथ साथ अपने गीतों को बड़े भावपूर्ण ढंग से गाता भी था ।

विरुपाक्ष को पद्मावती नामक एक कन्या से प्यार हुआ और उसने उससे प्रेम-विवाह कर लिया । विरुपाक्ष का दुर्भाग्य कि शादी के बाद एक साल भर के अन्दर वह युवती किसी बीमारी का शिकार हो मर गयी । इस पर विरुपाक्ष की कविता ने नया मोड़ लिया, दुख और विषाद भरे गीतों में उसकी कविता फूट निकली । दुख की तीव्र अनुभूति के कारण अब विरुपाक्ष के गीत और निखर उठे । उसकी कविता की एक एक पंक्ति गंभीर घाव कर जाती । इन कविताओं को जब वह स्वयं गाता तो सुननेवाले दिल थाम लेते । इन गीतों को गाकर उसका नम हलका हो जाता था ।

विरुपाक्ष के गीत सुनने के लिए हर रोज गाँव के लोग उसके यहाँ पहुँच जाते । वे कहते कि विरुपाक्ष के गीत सुनने से उन्हें मानसिक शान्ति मिल जाती है । कभी कभी लोग अपनी समस्याओं के बारे में विरुपाक्ष से बात करते । लोगों की अधिकतर समस्याएँ तो धन-संबंधी हुआ करती । विरुपाक्ष लोगों की आर्थिक सहायता भी करता । इसके मालूम होते पर धन की समस्या से पीड़ित और लोग भी विरुपाक्ष के घर पहुँचने लगे । अपनी पत्नी की मौत के कारण विरुपाक्ष वैसे भी जीवन से विरक्त हो गया था, इस लिए जो भी धन की सहायता माँगने आते वह ना नहीं करता था । धीरे धीरे उसके पास की सारी संपत्ति ख़तम हो गयी और अब उसके पास बस केवल उसका मकान बच गया ।

जब लोगों को पता चला कि विरुपाक्ष के

पास देने के लिए पैसा नहीं बचा है, तब उसके पास आनेवालों की संख्या भी घटती गई। इस बात का विरुपाक्ष को अत्यन्त दुख हुआ। विरक्त होकर उसने अपना मकान किसी रिश्तेदार को सौंपा और वह तीर्थयात्रा पर चल पड़ा।

सब से पहले विरुपाक्ष श्रीक्षेत्र काशी में पहुँचा। रास्ते से गुज़रनेवाले लोगों को वह अपने गीत सुनाने लगा। पर किसी ने भी उसके गीतों के प्रति अपनी अभिरुचि नहीं दिखाई। कवि-सम्मेलनों में सुप्रसिद्ध कवियों की कविताएँ तो सब चाव से सुनते हैं। इस रास्ते पर घूमनेवाले कवि की कविता भले ही उच्च कोटी की हो, उसकी क़द्र कौन करे? आने-जानेवाले लोग एक नज़र उसकी ओर देखते और आगे बढ़ते। विरुपाक्ष की कविता की क़द्र करनेवाला उस महानगरी में कोई न था। लोगों ने सोचा कि वह भिखारी है। इस लिए कुछ लोगों ने दयावश कुछ पैसे दिये और खाना खिलाया।

विरुपाक्ष को जब मालूम हुआ कि उसके गीत सिवाय उसके और किसी को आनन्द प्रदान नहीं करते जो वह जीवन से अत्यधिक विरक्त हुआ और गंगा नदी में कूद कर प्राणत्याग करनेको हुआ। गंगा के किनारे पर जाकर कुछ समय के लिए उसने ध्यान किया। फिर गंगा मैया से प्रार्थना की—"हे गंगे, अब मैं ज़िन्दा रहूँ तो किस लिए? मैं किसी की कुछ सेवा नहीं कर सकता। जब तक मेरे पास धन था, लोग बराबर आते थे। जब मैं दरिद्र हो गया तो कोई मेरे फटकता तक नहीं। मेरे गाँव में लोग मेरी कविताएँ सुनते थे और उनको आनन्द मिलता था। इस नगरी में मेरी कविता सुननेवाला कोई नहीं। लोग मेरी अवहेलना करते हैं, मुझे भिखारी समझते हैं। ऐसा जीवन जीने से क्या फ़ायदा। इस लिए माते, अब तू ही मेरा सहारा! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। तू मुझे अपने में मिला ले।"

इस हालत में एक बैरागी ने विरुपाक्ष की रक्षा की। अपनी धर्मशाला में ले जाकर बैरागी ने उसे समझाया—"बेटा, तुम्हारी उम्र कुछ ज़्यादा तो है नहीं। क्या कारण हुआ कि आत्महत्या का विचार तुम्हारे मन में आया? अगर हो सके तो मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

विरुपाक्ष ने बैरागी को अपना सारा क़िस्सा

सुनाया—"स्वामिन्, मेरी पत्नी की मृत्यु से मुझे अतीव दुख हुआ। इससे मेरे कंठ से जो संगीत निकला उससे मेरे मन को अद्भुत शांति मिली। मैं समझ गया संगीत में वह जादू है जो असहनीय दुंख को भी सान्त्वना दे सकता है। कई लोग मेरे घर आते थे और मेरे गीतों को सुनकर अद्भुत आनन्द पा लेते। मुझे बड़ा ही संतोष हुआ कि मेरे गीत कई दुखियों को शांति और आनन्द प्रदान करते हैं। पर जब मेरे पासवाला धन नष्ट हो गया तो संगीत सुननेवाले भी नहीं रहे। अब मैं दोहरी पीड़ा से पीड़ित हूँ—एक मेरी पत्नी का विरह, और दूसरी मेरा किसी के काम का न होना। इस पीड़ा से मैं जीवन से पूर्णतः विरक्त हुआ। इस हालत में आप ही बताइए मैं जीवित रहकर करूँ तो क्या करूँ ?"

बैरागी ने हँसकर कहा—"देखो बेटा, जीवन धारण करनेवाले हर प्राणी को जिस प्रकार मृत्यु अनिवार्य है, उसी प्रकार जीवन भी अवश्यंभावी है ! तुम अपने मन का दुख मुझे बताओ, मैं यथासंभव उसे दूर करनेका प्रयास करूँगा।"

इस पर विरुपाक्ष ने निवेदन किया—"स्वामिन इस संसार में प्रत्येक प्राणी किसी न किसी पीड़ा का अनुभव करना है अवश्य, साधारणतः मनुष्य यह मानता है कि सब प्रकार की पीडाओं का मूल कारण धन है। पर मैं इस को सत्य नहीं मानता। मैं ने अपने अनुभव के आधार पर जान लिया है कि मनुष्य की सभी व्यथाओं को दूर करके उसे मानसिक शांति प्राप्त कराने में संगीत से बढ़कर अच्छा कोई साधन नहीं है। पर मैं संगीत-विद्या में पारंगत नहीं हूँ। अगर मेरे सुरों से मेरी व्यथा प्रस्फुटित हो जाती है, तो इस से केवल मुझी को शांति मिलती है। मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं वह संगीत गा सकूँ जो सब लोगों को शांति प्रदान कर सके। साथ साथ मैं यह भी चाहता हूँ कि मेरा संगीत सुननेवाले केवल मानसिक शांति प्राप्त करें, इस से और किसी लाभ की आशा न रखें। मैं भी संगीत सुनानेके फलस्वरूप जनता से किसी अन्य लाभ की आकांक्षा न रखूँ। महात्मन्, क्या आप मेरी इस इच्छा की पूर्ति कर सकते हैं ?"

बैरागी ने विरुपाक्ष के हाथों में एक थैली और

एक बाँसुरी थमा दी और बोला—"बेटा, जब तुम इस वेणु से सुर निकालोगे, तब तुम्हारे मुँह से एक अद्भुत संगीत प्रकट होगा। वह भले ही तुम्हें किसी प्रकार का आनन्द प्रदान न कर सके, लेकिन श्रेताओं को आनन्द देगा। उनके आनन्द से ही तुम्हें मानसिक शांति प्राप्त होगी। अब रही इस थैली की बात। यह थैली तुम जब चाहो तब तुम्हें खाना और कपड़ा देती रहेगी। यों तुम किसी पर निर्भर रहे बिना सब को मानसिक शांति प्रदान कर सकते हो। एक बात याद रखो इस थैली और बाँसुरी की अद्भुत शक्ति केवल तुम्हारे ही काम आएगी। प्रयत्न करने पर भी कोई इसको तुम से अलग नहीं कर सकता।"

विरुपाक्ष ने थैली और बाँसुरी को स्वीकार करते हुए कहा—"स्वामीजी, अब मैं अपने गाँव जाकर मेरी इच्छा को पूर्ण करूँगा।" विरुपाक्ष ने हाथ जोड़कर बैरागी को प्रणाम किया।

बैरागी ने विरुपाक्ष को आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा, बड़ी अच्छी बात है कि तुम निस्वार्थ भाव से जनता को मानसिक शांति प्रदान करना चाहते हो। तुम्हारा संकल्प बड़ा ही प्रशंसनीय है। पर माया-भरे इस संसार में किसी मानव के अन्दर ऐसा स्वार्थरहित संकल्प अधिक समय तक टिक नहीं पाता। जिस दिन तुम्हारे मन में स्वार्थ का प्रादुर्भाव होगा, उसी समय यह थैली और वेणु अपनी अद्भुत शक्तियों से वंचित हो जाएँगी। स्वार्थ को छोड़ अगर तुम किसी और न्यायसंगत विषय के लिए अपने संकल्प को बदल डालोगे, तब यह बाँसुरी तुम्हारे श्रोताओं के बदले केवल तुम्हें ही आनंद देनेवाला संगीत प्रकट करेगी। तब यह थैली तुम्हारी खोई हुई संपत्ति तुम्हें लौटा देगी। तब तुम एक नये उत्साह के साथ नये जीवन का श्रीगणेश करोगे।"

इस के बाद विरुपाक्ष बैरागी से विदा लेकर अपने गाँव लौट आया।

प्रारंभ में विरुपाक्ष की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया, पर धीरे धीरे विरुपाक्ष के वेणुनाद को असाधारण लोकप्रियता प्राप्त हुई। गाँववाले उस बाँसुरी की माधुरी में मुग्ध होकर तन्मय हो जाते।

कुछ ही दिनों में विरुपाक्ष की कीर्ति केवल अपने गाँव में ही नहीं, आसपास के गाँवों में भी फैल गयी। शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से

पीडित लोग, विकलांग, वृद्ध तथा आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त लोग भी उसका वेणुनाद सुनकर मानसिक शांति प्राप्त कर लेते। विरुपाक्ष को इस बात का संतोष था कि उसके बाँसुरी के सुर भले ही उसको आनंद प्रदान न कर सकें, पर अन्य अगणित लोगों को उन से शांति का अनुभव मिलता है।
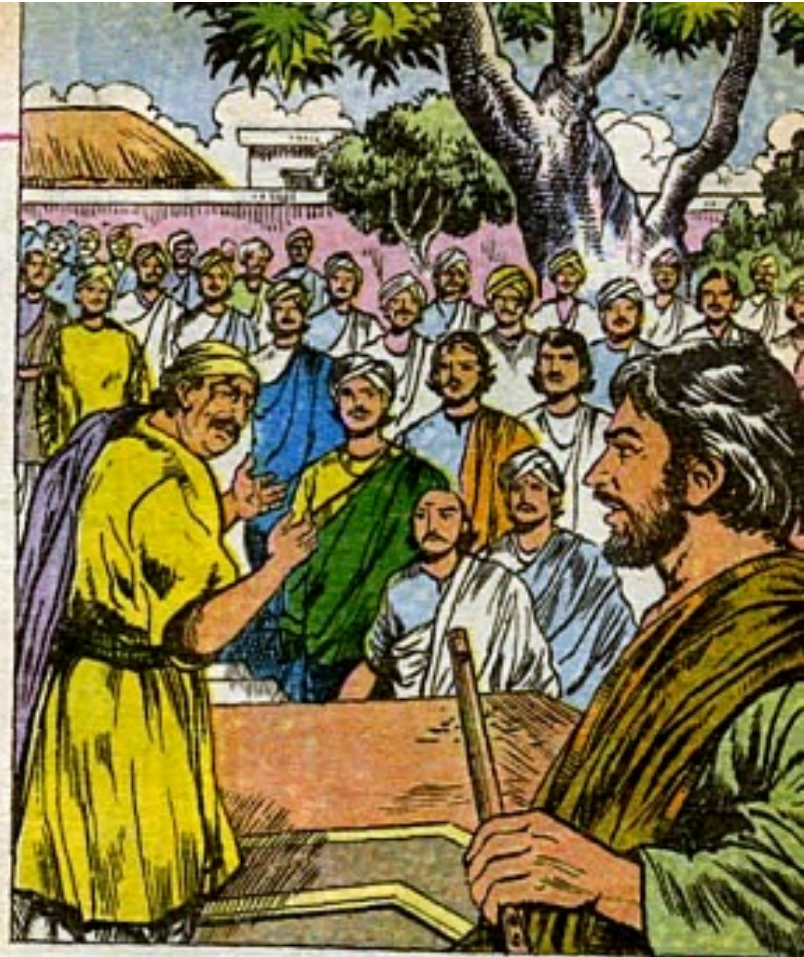
पर यह स्थिति अधिक समय तक न रही। विरुपाक्ष पहले विरक्त हो तीर्थाटन पर चला था, उस समय उसने अपना मकान अपने किसी रिश्तेदार को सौंपा था। उसने सोचा था कि अब विरुपाक्ष लौटकर नहीं आएगा। अब वह मकान मानो उसी का हो गया। जब विरुपाक्ष लौटकर गाँव में आया, तो उस रिश्तेदार को ख़तरा मालूम हुआ। उसने सोचा कि विरुपाक्ष के अन्दर पुनः विरक्ति का भाव जागृत कर उसे अन्यत्र भेज देना चाहिए। इस लिए वह गाँववालों के बीच विरुपाक्ष के विरुद्ध ज़ोरदार प्रचार करने लगा।

गाँववाले सोचने लगे कि विरुपाक्ष किसी स्वार्थ को मन में रख सब को संगीत सुना रहा है। उसके रहस्य को समझ लेना चाहिए।

यों कुछ दिन गुज़रे। एक दिन विरुपाक्ष ने एक संगीत-सभा का आयोजन किया। इस सभा में उसका वह रिश्तेदार भी उपस्थित था। उसने एक अलग तान छेड़ी, कहा—"सुनो विरुपाक्ष, गाँव के लोग सोचते हैं कि तुम स्वार्थवश लोगों को अपना संगीत सुनाते हो। इसमें कितना सत्य है मैं नहीं जानता। मैं इतना ज़रूर जानता हूँ कि हर काम के पीछे कोई प्रयोजन होता है। तुम्हीं स्वयं बताओ न, तुम किस इरादे से यह संगीत सुनाते हो ?"

विरुपाक्ष ने भोले भाव से अपना उद्देश प्रकट करते हुए निवेदन किया—"मेरा संगीत अनेक लोगों को आनन्द प्रदान करता है, इस से मेरे मन को शांति मिलती है। इस से बढ़कर और कोई मेरी इच्छा नहीं है। बस !"

"अगर यही बात सच है और तुम अपने को संगीत के महान् कलाकार मानते हो तो किसी राजा के दरबार में जाकर अपनी विद्या का प्रदर्शन क्यों नहीं करते हो ? यहाँ पर ही क्यों ?" रिश्तेदार ने पूछा।

विरुपाक्ष पल भर मौन रहा और फिर

कर रहा है ।"

तिस पर भी गाँववाले सब मौन रहे । तब विरुपाक्ष ने झट खड़ा होकर कहा—"अगर आप लोगों का यह विचार है तो मैं इसी क्षण से अपना बाँसुरी-वादन बंद कर देता हूँ ।"

ग्रामवासी मौन रहे । विरुपाक्ष वहाँ से चला गया । दूसरे दिन विरुपाक्ष का रिश्तेदार उससे मिला और बोला—"मित्र, मुझे क्षमा कर दो । गाँववालों की दुष्ट बुद्धि बताने के लिए मैंने सभा में ये बातें कही थीं । दरअसल मैं तुम्हारे प्रति आदर और इज़्ज़त का भाव रखता हूँ । अगर तुम गाँव छोड़ कर जानेवाले हो, तो तुम्हारा घर मेरे हाथ सौंप कर जाना । वैसे भी मैं ग़रीब हूँ, तिस पर मेरे बाल-बच्चे भी बहुतेरे हैं ।"

विरुपाक्ष ने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया । कुछ दिनों बाद श्रीकर नाम का एक आदमी विरुपाक्ष के पास आया और उस ने कहा—"मित्र, तुम्हारे रिश्तेदार ने लालच में आकर दुष्ट बुद्धि से उस दिन वे सारी बातें कहीं थीं । पर गाँव के किसी व्यक्ति ने भी उसकी बातों का विश्वास नहीं किया । तुम्हारे संगीत से तो सब लोग प्रभावित हैं । मेरी बात का विश्वास करके तुम गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के घर जाकर उसके विचार जानने की कोशिश करो । यदि मेरी बात सच निकली दो तुम अपना वेणु-नाद फिर से सुनाना शरू करो ।"

इस के बाद विरुपाक्ष श्रीकर के साथ जाकर सभी गाँववालों से अलग अलग मिला । सभी ने

बोला—"मानसिक शांति प्रदान करनेवाली विद्या पुरस्कार और मान-सम्मान नहीं चाहती । जो मानसिक शांति की इच्छा रखते हैं, चाहे वह राजा भी क्यों न हो, उनको मेरी खोज में आना होगा ।"

इस पर विरुपाक्ष के रिश्तेदार ने जनता से कहा—"सुन रहे हो न ? विरुपाक्ष के अन्दर कैसा अहंकार भरा हुआ है ! यह मानता है कि हम लोग लाचार होकर इसका संगीत सुनने आते हैं ।"

पर गाँववाले सब मौन रहे । इस पर विरुपाक्ष का रिश्तेदार और भड़ककर बोल उठा—"जो लोग इस के अहंकार को सहन करते हैं, वे ही विरुपाक्ष का संगीत सुनते हैं । विरुपाक्ष चाहे कुछ भी कहे, उसके अहंकार से वह असंबद्ध प्रलाप

उसका संगीत सुननेकी अपनी इच्छा प्रकट की

अब श्रीकर ने पूछा—"तुम ने सब के विचार सुन लिये न ? आज ही तुम सबको अपना संगीत सुनाना प्रारंभ करो ।"

विरुपाक्ष ने तुरन्त अपनी थैली से बाँसुरी निकाली और श्रीकर को एक गीत सुनाकर पूछा—"बताओ कैसे लगा ?"

श्रीकर ने विस्मय से कहा—"यह तो अत्यंत साधारण लगा मुझे !"

विरुपाक्ष ने कहा—"मुझे तो बहुत अद्भुत लगा ! भविष्य में इस बाँसुरी के सुर केवल मुझे ही आनन्द प्रदान करेंगे !"

श्रीकर समझ नहीं पाया कि आखिरकार बात क्या हुई ? तब विरुपाक्ष ने बैरागी की बताई सारी बातें सुनाते हुए कहा—"अगर ग्रामवासी सचमुच मेरी बाँसुरा-वादन बड़े मन से सुनना चाहते, तो उस दिन मेरे रिश्तेदार के किये आरोपों का वहीं खंडन कर देते । पर लोगों ने ऐसा नहीं किया । इस लिए ये लोग मेरे अद्भुत संगीत को सुनने की योग्यता नहीं रखते । जो आदमी अपनी आँखों के सामने घटनेवाले अन्याय का दृढतापूर्वक सामना करके अपने दूर भागनेवाले प्रारब्ध को दौड़कर पकड़ सकता है, वही सब प्रकार के सत्करों के योग्य बन जाता है ।"

श्रीकर समझ गया कि सारे गाँववालों की इच्छा के बावजूद बाँसुरी-वादन बन्द करने में विरुपाक्ष के मन में कोई स्वार्थ निहित नहीं है । इसे भाँपकर यह चिंतित हो वहाँ से चला गया ।

इसके बाद गाँव से दूर एक पर्णशाला बनाकर विरुपाक्ष वहाँ रहने लगा । उस एकान्त में उसे गंभीर शान्ति मिलने लगी । अपनी पर्णशाला को उसने सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया । बैरागी से प्राप्त थैली की महिमा से धन प्राप्त करके उसे गरीबों तथा निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा में लगाने लगा । ग़रीब विद्यार्थी आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके लिए बराबर उसके पास पहुँचते रहे । वह सब की सहायता करता रहा । परोपकार में निहित अद्वितीय आनंद का अनुभव करते हुए सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा ।

जादू की घंटी

बरसों पहले की बात है। चीन में दो भाई रहा करते थे। वैसे ये दोनों एक ही माँ के बेटे थे, मगर उनके चाल-चलन और व्यवहार में बड़ा अन्तर था।

बड़ा भाई दुष्ट था, जब कि छोटा भाई बड़ा बुद्धिमान था।

कुछ साल बाद उनके पिता का स्वर्गवास हुआ। इसपर बड़े भाई ने सारी संपत्ति अपने कब्जे में कर ली और अधिक सूद पर पैसा उधार दे देकर बड़ा अमीर बन बैठा। छोटा भाई बड़े का विरोध न कर सका और मन मसोस कर रह गया। अनेक प्रकार से वह गाँववालों की मदद करता, दिनभर कष्ट करता और अन्य लोगों की मदद से अपना पेट पालता था।

एक दिन छोटे भाई को चीनी की चाशनी बहँगी में लिये पड़ोस के गाँव में पहुँचाने का काम आ पड़ा। वहाँ तक पहुँचानेवाला रास्ता पहाडी रास्ता था। थोडी देर पहले बरसात हो चुकी थी, इसलिये पहाडी रास्ते में बहुतसी जगहों पर फिसलन थी। छोटा भाई बहँगी लिये पहाडी रास्ते से गुज़र रहा था। अचानक उसका पैर फिसल गया और वह चाशनीवाले बर्तनों के साथ समतल मैदान तक लुढ़कता गया! बर्तनों में भरी चाशनी से उस का सारा शरीर लथपथ हो गया और हवा लगने से चाशनी उस के शरीर पर जम गयी।

वह अभी उठ भी नहीं पाया था, कि कुछ पिशाच उधर से आ गये और चिल्ला उठे, "ओहो, कितनी बड़ी चीनी की गुड़िया हैं यहाँ!" उन में से कुछ पिशाचों ने गुड़िया को खाना चाहा। मगर इतनी बड़ी गुडिया एक ही लतक में खा जाना मुमकिन नहीं था। इसलिये सब पिशाचों ने मिलकर छोटे भाई को उठा लिया और अपनी गुफ़ा में ले जाकर उसको एक चट्टान पर

चीनी लोककथा

बिठा दिया ।

इसके बाद पिशाच उस चीनी की गुड़िया को चारों तरफ़ से घेरकर उसको नोचकर चीनी के टुकडे खाने लगे । उन्होंने एक एक टुकड़ा निकालकर खाया न खाया, इतने में सींगवाला एक और पिशाच वहाँ पहुँचा और बोला, "ए, बस, ज्यादा नहीं खाओ । ज़्यादा चीनी खाने से खाने का स्वाद जाता रहेगा । खाना खाकर हमें खेलने जाना है न ! चलो, हमारी जादूकी घंटी ले आओ ।'

तब तक छोटा भाई बिना हिले वहीं पड़ा हुआ था । उसे इस बातका डर था, कि यदि पिशाचों को मालूम हो जाय कि वह एक मनुष्य है, तो ये उसे सता सताकर मार डालेंगे ।

इस बीच तरह तरह के भोजन पदार्थ वहाँ भोजन पदार्थ वहाँ प्रस्तुत हुए ।

उन पदार्थों की सुगन्ध छोटे भाई की नाक में घुसी तो उस के मुँह में पानी भर आया । उसे बड़ी भूख महसूस होने लगी । पिशाचों ने खुशी खुशी वे पदार्थ खाये और जादू की घण्टी एक स्थान पर सुरक्षित रखकर फिर उछल-कूद करते वहाँ से चले गये ।

जब सभी पिशाच गुफ़ा से निकल गये तब वहाँ कोई नहीं बचा है ऐसा देखकर छोटा भाई चट्टान पर से उठ खड़ा हुआ । झट जादू की घण्टी हड़पकर उसने अपने कुर्ते के अन्दर छिपा ली और घर की ओर भाग खड़ा हुआ ।

इसके बाद छोटे भाई के लिये भोजन की समस्या नहीं रही । उसे जब भी भूख लगती, जादूकी घण्टी बजाकर मिष्टान्न प्राप्त कर लेता था ।

छोटे भाई की किस्मत खुलने का समाचार सुनकर बड़े भाई के मन में ईर्ष्या पैदा हुई । उसने सोचा कि शायद छोटे भाई का अनुकरण करने पर उस की भी किस्मत खुल जाएगी । इस विचार के आते ही बड़ा भाई भी चाशनी भरे पात्रों की बहँगी कन्धे पर लेकर पहाड़ी रास्ते पर चल पड़ा । इस बार कीचड़ और फिसलन न होने पर भी जान-बूझकर बड़ा भाई घाटी की ओर लुढ़क पड़ा और सारे शरीर पर चाशनी का लेप कर के वहीं पड़ा रहा । थोड़ी ही देर में पिशाच वहाँ आ पहुँचे । बड़े भाई को देखकर वे चिल्ला उठे, "देखो,

देखो, वही भागा हुआ चीनी का आदमी है यह। इस को हम गुफ़ा में ले जायेंगे और वहीं बैठकर सोच लेंगे कि, इस दगाबाज़ के प्रति हमें कैसा व्यवहार करना चाहिये।

उनकी बातें सुनकर बड़े भाई को लगा— लो ! अपनी भी किस्मत खुल गयी !

पिशाच बड़े भाई को उठा ले गये और अपनी गुफ़ा की चट्टान पर उसे बैठा दिया।

सींगवाला पिशाच बोल उठा, "पिछली बार यही आदमी हमारी जादू की घंटी चुरा ले गया है। इस बार हम उसे भांड में थोड़ी देर उबाल देंगे।"

इसके बाद पिशाचों ने बड़े भाई को एक बड़े से खाली बर्तन में रखा, उस में पानी डालकर बर्तन चूल्हे पर चढ़ा दिया और नीचे आग सुलगा दी। बर्तन के भीतर का पानी जैसे जैसे गरम होता गया, वैसे वैसे बड़े भाई की पीड़ा बढ़ती गयी। आखिर वह वेदना को सहन नहीं कर पाया। हंड़ी के भीतर से यह बाहर कूद पड़ा और गुफ़ा के बाहर दौड़ पड़ा। मगर वह ज्यादा दूर नहीं पहुँच सका। पिशाचों ने उसका पीछा कर के उसे पकड़ लिया।

सींगवाला पिशाच दूसरे पिशाचों से बोला, "यह दुष्ट फिर हमारे हाथ आये न आये, हमें इसी वक्त उसे ऐसा सबक सिखाना चाहिये, जिसे वह अपनी ज़िन्दगीभर याद रखेगा।"

अब और क्या चाहिये ? एक पिशाच उस के पास पहुँचा और उसकी नाक पकड़कर एक फुट लंबी खींच दी। इस प्रकार सात पिशाचों ने उसकी नाक खींचकर एक एक फुट लंबी बनायी। फिर पिशाचों ने उसके पैरों को पकड़कर उसे गुफ़ा के बाहर फेंक दिया।

'जान बची, लाखों पाये' उक्ति के अनुसार बड़ा भाई अपनी सात फुट लम्बी नाक लपेटकर हाथ में ले अपने घर पहुँचा।

इधर बड़े भाई की पत्नी बड़ी उत्सुकता से अपने पति का इन्तज़ार कर रही थी, कि उसका पति पिशाचों के यहाँ से कोई अद्भुत चीज़ लाएगा। पति की आवाज़ सुनकर वह झट किवाड़ खोलकर बाहर आयी।

मगर उसका पति कराह कर बोला, "अरी, अरी ! तुम मेरी नाक पर खड़ी हो। हट जाओ।"

"यह तुम कैसी अजीब बात कह रहे हो ? तुम्हारी नाक पर भला मैं कैसे खड़ी रह सकती हूँ ?" यह कहते कहते उसने अपने पति की ओर देखा और चकित हो गयी ।

बड़े भाई ने अपनी पत्नी को सारा हाल सुनाया। उसकी सारी कहानी सुनकर गहरी साँस लेकर वह बोली, "पिशाचों ने जो करतूत की, उसका इलाज भी उन्हीं के पास होगा । फिर मैं तुम्हारे छोटे भाई की सलाह भी लेकर आती हूँ ।" कहते हुए वह चल पड़ी ।

भाभी जब पहुँची, तब छोटा भाई हल जोतने के लिये जाने की तैयारी में था । वह बड़ा चतुर था इसलिये उसने पहले ही जानकारी प्राप्त कर ली थी कि, उस के पास जो जादू की घण्टी थी, वह न केवल भोजन पदार्थ देती है, बल्कि उस की हर माँग की पूर्ति भी कर सकती है । फिर भी चूँकी वह आलसी जीवन बिताना नहीं चाहता था, वह घंटी की मदद से खेती बाड़ी से संबंधित औज़ार मात्र प्राप्त कर के घंटी को पेटी में बन्द रखकर खुद मेहनत करके खेती का काम करके अपनी ज़िन्दगी बसर करता था

"भाभीजी, कैसे आना हुआ ?" छोटे ने भाभी से पूछा ।

आँखों में आँसू भरकर पिशाचों ने उसकी पति की पिशाचों ने कैसी दुर्गति कर दी थी इसका सारा चिट्ठा भाभी ने देवर के सामने खोल दिया । सारी कहानी सुनने पर छोटे भाई ने कहा, "मैं पिशाचों की गुफ़ा तक जाकर पता करूँगा; कहीं भाई की नाक ठीक करने का उपाय वहीं मालूम हो जाय ।"

छोटा भाई पिशाचों के भोजन के समय उस गुफ़ा के पास पहुँचा और बड़ी सावधानी से भीतर का वार्तालाप सुनने लगा ।

वार्तालाप के संदर्भ में एक छोटे पिशाच ने कहा, "बेचारे उस चीनीवाले आदमी की नाक का क्या हाल हुआ होगा ?"

"अगर वह थोड़ीसी अक्ल रखता है, तो अपनी नाक को ठीक करने का साधन भी उसी के पास है । जादू की घंटी पर एक एक प्रहार करके 'घट जाओ', 'घट जाओ' कहने पर उसकी नाक हर बार थोड़ी थोड़ी करके घटती जाएगी ।"—सींगवाले पिशाच ने कहा ।

यह बात सुनकर छोटा भाई दौड़ा-दौड़ा घर पहुँचा और संदूक से घंटी निकालकर उसके साथ बड़े भाई के घर पहुँचा ।

"सुनो देवरजी, तुम शीघ्र इनकी नाक ठीक कर दो ।" भाभी ने आग्रह किया ।

छोटे भाई ने घंटीपर प्रहार करके अपने भाई की नाक की ओर देखते हुए कहा, "घट जाओ ।"

बड़े भाई की नाक तीन इंच घट गयी ।

छोटे भाई ने फिर एक बार घंटी पर प्रहार करके 'घट जाओ' कहा । इस बार भी नाक तीन इंच घट गयी ।

इस प्रकार करते और 'घट जाओ' कहते एक घंटा बीतते बीतते भाई की नाक चार फुट लम्बी रह गयी । पर छोटे भाई की भाभी को वह समय एक युग जैसे लगा । उसको लगा कि, छोटा भाई मूर्ख है, वह ख्वाहम् ख्वाह ज़्यादा समय लगा रहा है और नाक घटने में अधिक देर लग रही है ।

भाभी अब ज़्यादा देर सहन न कर सकी और उसने अपने देवर के हाथ से घंटी खींच ली । और 'घट जाओ', 'घट जाओ' कहते घंटी पर ताबड़तोड़ मारती गयी ।

परिणाम स्वरूप घंटी टूटकर टुकड़े टुकड़े हो गयी । बड़े भाई की नाक घटकर ठीक होने की बात दूर हो गयी, बल्कि उसकी सारी नाक घटकर अन्दर धँस गयी ! अपनी पत्नी की बेवकूफ़ी के कारण बड़ा भाई सदा के लिये नाक कटा बन गया ।

अपनी घंटी के टूटने का छोटे भाई को बहुत दुख हुआ । उसने भाभी से कहा— "भाभीजी, जल्दबाज़ी में आकर यह आप ने क्या किया ? भाई की नाक चली गयी, और मेरी घंटी भी जाती रही । मेरी भाग्य से क़िस्मत खुली थी, आपने मेरा सत्यनाश किया ।"

भाभी भी फूट-फूट कर रोने लगी । उसको पति की नाक जानेका दुख हुआ और देवर की क़िस्मत फूटने का । पर तब पछताये होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत !
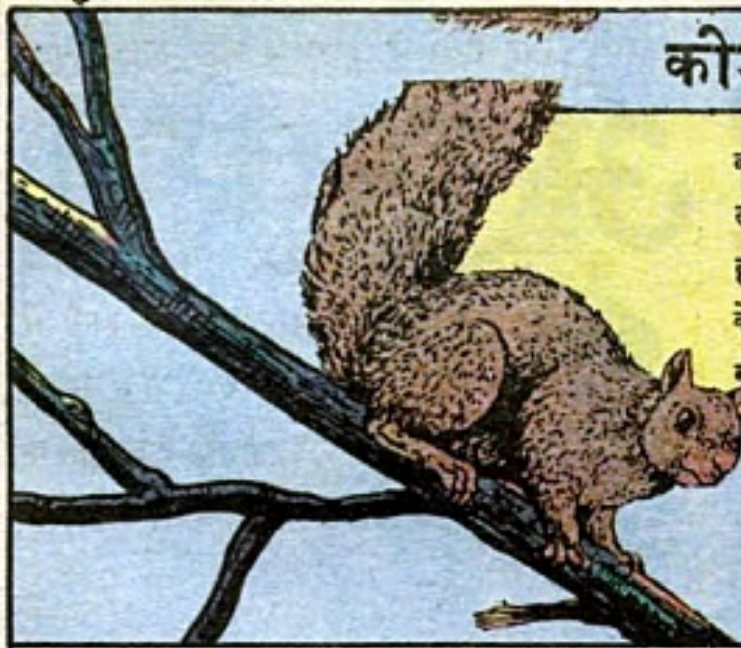
कीड़े, कीड़े और कीड़े
कहा जाता है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा लाल गिलहरी के बदनपर ज्यादा कीड़े होते हैं। यह जानकारी प्राप्त हो गयी कि केवल एक गिलहरी के बदनपर १३,००० कीड़े होते हैं।

उड़ने में कुशल
आल्बट्रास पक्षी छः दिन तक बिना पंख फड़फड़ाये हवामें उड़ता रह सकता है।

अमेजान नदी का जल
संसार में अमेजान नदी के बाद जो आठ नदियाँ क्रमशः बड़ी मानी जाती है, उन नदियों में कुल मिलाकर जितना जल हैं, उससे कहीं अधिक जल अकेली अमेजान नदी में है।
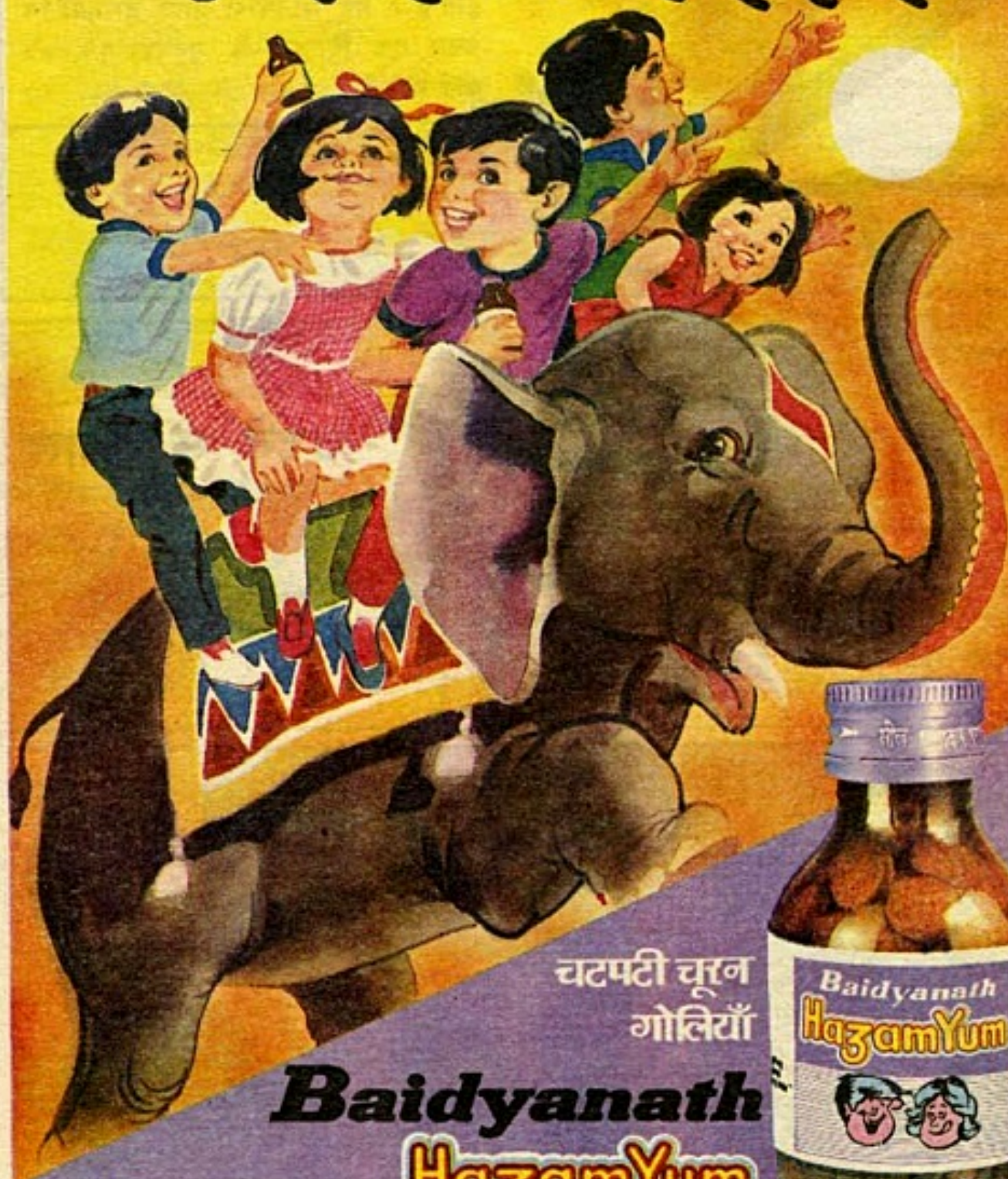
मज़ेदार! असरदार!!
चटपटी चूरन
गोलियाँ
Baidyanath
HazamYum
Baidyanath
HazamYum

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ नवम्बर १९८८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

M. Natarajan

M. Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ सितम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जुलाई के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : दवा बिना बीमार ।

द्वितीय फोटो : हवा बिना बेकार ।।

प्रेषिका : कु. कविता यादव, ३७४ बी/७ फेथफुलगंज, छावनी, कानपुर-२०८ ००४

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये .

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास -६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

अपने शिशु को दीजिए सैरेलॅक का अनूठा लाभ

कीजिए ठोस आहार की आदर्श शुरुआत

४ महीने की उम्र से आपके शिशु को दूध के साथ-साथ ठोस आहार की भी ज़रूरत होती है. उसे सैरेलॅक का अनूठा लाभ दीजिए.

पौष्टिकता का लाभ : सैरेलॅक का प्रत्येक आहार आपके शिशु की आवश्यकता के अनुसार सारे पौष्टिक तत्व प्रदान करता है — प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, विटामिन तथा मिनरल. सभी पूरी तरह संतुलित.

स्वाद का लाभ : शिशुओं को सैरेलॅक का स्वाद बहुत भाता है.

समय का लाभ : सैरेलॅक पहले से ही पकाया हुआ है और इसमें दूध और चीनी मौजूद है. केवल इसे उबाले हुए गुनगुने पानी में मिला दीजिए.

पसंद का लाभ : तीन तरह के सैरेलॅक में से आप अपनी पसंद का चुन सकती हैं.

कृपया डिब्बे पर दिए गए निर्देशों का सावधानी से पालन कीजिए ताकि इसके बनाने में स्वच्छता रहे और आपके शिशु को संतुलित पोषाहार मिले.

मुफ्त ! सैरेलॅक बेबी केयर बुक
लिखिये : सैरेलॅक, पोस्ट बॉक्स नं. 3
नई दिल्ली-110 008

सैरेलॅक का वादा : स्वाद भरा संपूर्ण पोषाहार

RK SWAMY/FSL/5112/HIN

CHANDAMAMA

CHANDAMAMA (Hindi) SEPTEMBER 1988 Regd. No. M. 5452